धर्मायण

मूल्य : 20 रुपये
अंक 105
चैत्र, 2078 वि. सं.

(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)

श्रीरामजन्म विशेषांक

केशव एवं केशव खुर्द द्वारा निर्मित (16वीं शती)

भए प्रगट कृपाला, दीनदयाला, कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी, मुनि मन हारी, अद्भुत रूप बिचारी॥

विशालनाथ मन्दिर हाजीपुर में शिवरात्रि के अवसर पर शिव-विवाह का कार्यक्रम

महावीर मन्दिर न्यास द्वारा स्थापित और संचालित हाजीपुर में गंगा एवं गण्डक के संगम स्थल पर कोनहारा घाट स्थित विशालनाथ महादेव मन्दिर में इस वर्ष शिवरात्रि के अवसर पर दिनभर अभिषेक के बाद स्थानीय परंपरागत विधि-विधान से शिव विवाह का आयोजन किया गया। यह शिव मन्दिर गंगा एवं गंडक के संगम पर महावीर मन्दिर द्वारा बनाया गया है। यहाँ गुप्तकालीन शिवलिंग एवं शिव-पार्वती की आधुनिक मूर्तियाँ हैं। यह शिवमन्दिर बिहार राज्य के अन्तर्गत वैशाली जिला मुख्यालय हाजीपुर में गंगा एवं गण्डक के संगम पर अवस्थित है। पटना-हाजीपुर सडक मार्ग पर महात्मा गाँधीसेतु पार करने के बाद

रामचौरा होते हुए कोनहारा घाट तक जाने वे सड़क मार्ग से यहाँ जाया जा सकता है।

कोनहारा घाट पर गंगा एवं गण्डक का पवित्र संगम है, जहाँ सोन की धारा भी आ जाती है, फलत: इस कोनहारा घाट पर लाल रंग के पत्थर के टुकड़े भी मिलते हैं। इस प्रकार इस पवित्र संगम को हम त्रिवेणी संगम भी कह सकते हैं। यहाँ विश्वकर्मा मन्दिर, नेपाली मन्दिर, बद्रीविशाल मन्दिर आदि अन्य प्रसिद्ध मन्दिर हैं। कोनहारा घाट श्मशान घाट के रूप में अत्यन्त पवित्र माना जाता है। परम्परा के अनुसार इसी स्थान पर गज एवं ग्राह की लड़ाई हुई थी और भगवान् विष्णु अपने भक्त गज की रक्षा के लिए आये थे। 'कोनहारा' शब्द की व्युत्पत्ति आज 'कौन हारा' यानी गज एवं ग्राह के युद्ध में कौन हाराए इसका निर्णय इसी स्थल पर हुआ था, ऐसा कहते हैं। हलाँकि शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार 'कोणह्रद' यानी दो नदियों के संगम पर बननेवाला तालाब 'कोनहारा' बन गया। अध्यात्म रामायण के अनुसार राज्याभिषेक के बाद श्रीराम जब तीर्थयात्रा के क्रम में मिथिलापुरी आये थे तो उन्होंने इसी कोणह्रद में स्नान किया था तथा

आवरण पृ. 3 पर जारी

सुरम्य प्रकृति की गोद में गुप्तकालीन शिवलिंग पर महावीर मन्दिर के द्वारा नवनिर्मित मन्दिर।

धर्मायण

Title Code- BIHHIN00719

आलेख-सूची

1. **सन्त जानकी दास की कृति "रामजनम बधाई"-** (पाण्डुलिपि से सम्पादन)
-भवनाथ झा 3

2. **श्रीरामपट्टाभिषेकविधि,** (प्रथम बार पाण्डुलिपि से सम्पादित)
-डॉ. ममता मिश्र दाश 13

3. **रामायण की रचना के साथ जुड़े रामकथा के पूर्व-संकेत**
-डॉ. वसन्तकुमार म. भट्ट 21

4. **वैष्णव चिह्नों की परम्परा और सन्त पीपाजी**
-डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' 30

5. **पुरातात्त्विक स्रोत में राम और शिव की उपासना का समन्वय**
-डॉ. सुशान्त कुमार 38

6. **श्रीरामनामलेखन की विधि**
- श्री अंकुर पंकजकुमार जोशी 42

7. **रामायण के प्रसिद्ध पात्र श्रवण कुमार के वास्तविक नाम की खोज- यज्ञदत्त-वध** - डॉ. काशीनाथ मिश्र 44

8. **मैथिल महाकवि रूपनाथ उपाध्याय प्रणीत श्रीरामविजय महाकाव्य**
- डॉ. लक्ष्मीकान्त विमल 47

9. **सांस्कृतिक समन्वय के युगप्रतीक- श्रीराम**
- श्री महेश प्रसाद पाठक 51

10. **हनुमन्नाटक की रामकथा**
- आचार्य सीताराम चतुर्वेदी 59

10. **सूर्य सिद्धान्त का काल तथा शुद्धता**
- श्री अरुण कुमार उपाध्याय 63

पुस्तक समीक्षा आदि अन्य सभी स्तम्भ 76

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोधपरक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ-संकेत अवश्य दें।

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक 105

चैत्र, 2078 वि. सं.

29 मार्च, से 27 अप्रैल, 2021ई.

प्रधान सम्पादक

आचार्य किशोर कुणाल

सम्पादक

भवनाथ झा

पत्राचार:
महावीर मन्दिर,
पटना रेलवे जंक्शन के सामने
पटना- 800001, बिहार
फोन: 0612-2223798
मोबाइल: 9334468400

E-mail:
dharmayanhindi@gmail.com

Website:
www.mahavirmandirpatna.org/dharmayan/

Whatsapp:
9334468400

मूल्य : 20 रुपये

पाठकीय प्रतिक्रिया

(अंक संख्या 104, फाल्गुन, 2077 वि.सं.

आपको यह अंक कैसा लगा? इसकी सूचना हमें दें। पाठकीय प्रतिक्रियाएँ आमन्त्रित हैं। इसे हमारे ईमेल dharmayanhindi@gmail.com पर अथवा ह्वाट्सएप सं- +91 9334468400 पर भेज सकते हैं।

'धर्मायण' का अगला अंक **मातृशक्ति विशेषांक** के रूप में प्रस्तावित है। सनातन धर्म की विभिन्न शाखाओं में मातृशक्ति का महत्त्व प्रदर्शित किया गया है तथा इसी माध्यम से नारी की गरिमा का प्रदर्शन हुआ है। इस उदात्त विचार से सम्बन्धित आलेख **दिनांक 20 अप्रैल, 2021** तक आमन्त्रत हैं।

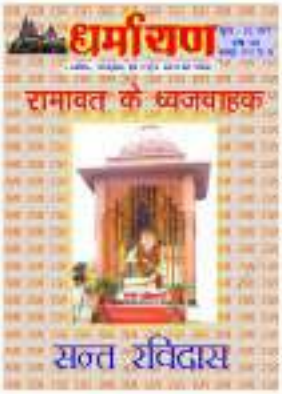

स्वामी रामानन्द का नाम भारत में भक्ति के अभ्युदय के लिए चिर स्मरणीय है। उनका योगदान यह भी है कि उन्होंने भक्त होने के लिए किसी का विशिष्ट होना जरूरी नहीं माना, सर्वसामान्य भी भक्त हो सकता है। यह आंदोलनकारी पहल थी और इसकी ध्वनि यह रही कि पुराणों के पाठ तक संपादित हुए और वर्ग, न्यात, ख्यात से ऊपर भक्ति विख्यात हुई। पाद्म जैसा ब्राह्म पुराण इसकी प्रतिध्वनि लिए है जो समन्वित रूप में सामने आया और "सन्त" जैसा शब्द लोकप्रिय हुआ। कबीर, पीपा, धन्ना, सेना, रैदास, सुरसरी जैसे सन्त ने भारत को नवीन पहचान दी। सन्त रैदास पर बहुत सुंदर अंक निकला है "धर्मायण" का। पढ़ने और सहेजने योग्य। भाई डॉ. भावनाथ झा और उनकी पूरी टीम को बधाई...- *श्रीकृष्ण जुगनू, जयपुर।*

मान्यवर,

उत्तम प्रस्तुति और सार गर्भित आलेखो के लिए पं भवनाथ झा को कोटिशः बधाइयाँ और शुभकामनाएं। आपकी लेखनी और संपादन कला को नमन वंदन और अभिनंदन है। आपके लिए प्रभु से प्रार्थना है:

मिले सदा शुभ हर्ष आपको, नहीं कभी आए अपकर्ष।
सतत सुधा साहित्य प्रवाहित, लिखे लेखनी यश उत्कर्ष।।

-शुभैषी

- *डा जे. बी. पाण्डेय, पूर्व अध्यक्ष हिंदी विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची।*

फाल्गुन मास विक्रम संवत 2077 का रविदास (रैदास) विशेषांक क्रम 104 का अध्ययन-मनन किया । सन्त रैदास से संबंधित गवेषणात्मक तथ्यों के ज्ञान-गाम्भीर्य से अभिभूत हूँ। सन्त कवि परम्परा के महान् कवि रैदास के अलौकिक अवतरण एवं उनकी अद्भुत भक्ति साधना की जानकारी देने वाले विद्वान् लेखकों के वैदुष्यपूर्ण आलेख प्रस्तुत कर इस 'धर्मायण' पत्रिका को अति समृद्ध किया गया है । संपादकीय में दुर्लभ्य 'रविदास पुराण' को ढूंढ निकालना आप सरीखे सारस्वत साधक संपादक से ही सम्भव था। कठिनाई से पठनीय कैथी लिपि का देवनागरी में लिप्यंतरण भी कम श्रम साध्य नहीं है । "सम्प्रदाय प्रवर्तक परम्परा" पर भी लेखिका का शोधपूर्ण आलेख श्लाघ्य है । मुख्य प्रतिपाद्य से इतर विषयों यथा "हनुमान विरचित हनुमन्नाटक से राम कथा", सूर्य सिद्धांत का काल तथा शुद्धता ,सन्त पीपाजी के उपदेश तथा 'हरि चरित्र' महाकाव्य आदि रचनाएं संग्राह्य एवं पठनीय हैं। समस्त आलेख अध्येताओं एवं शोधार्थियों के लिए अत्यंत उपयोगी तो हैं ही अन्य सुधी पाठकों एवं ज्ञान-पिपासुओं के लिए ज्ञानवर्धक एवं मुग्धकारी हैं । पत्रिका प्रकाशन के निष्काम-यज्ञ में स्रुवा लेकर आप पुरोधा बने हैं, सुयोग्य कर्मठ होताओं के पवित्र दिव्य-कृतियों के आज्य और शाकल्यों की आहुति पड़ रही है। ज्ञान का सुरभिमय धूम सहृदय सुधियों के नभोमंडल में आकल्प आच्छादित होता रहे, विश्वात्मा से यही प्रार्थना है। इति शुभम्।

दामोदर पाठक,
ग्राम, पोस्ट : खुखरा
जिला : गिरिडीह (झारखंड)
दूरभाष : +91 94313 82551

सन्त जानकी दास की कृति

रामजनम बधाई

(पाण्डुलिपि से सम्पादन)

भवनाथ झा

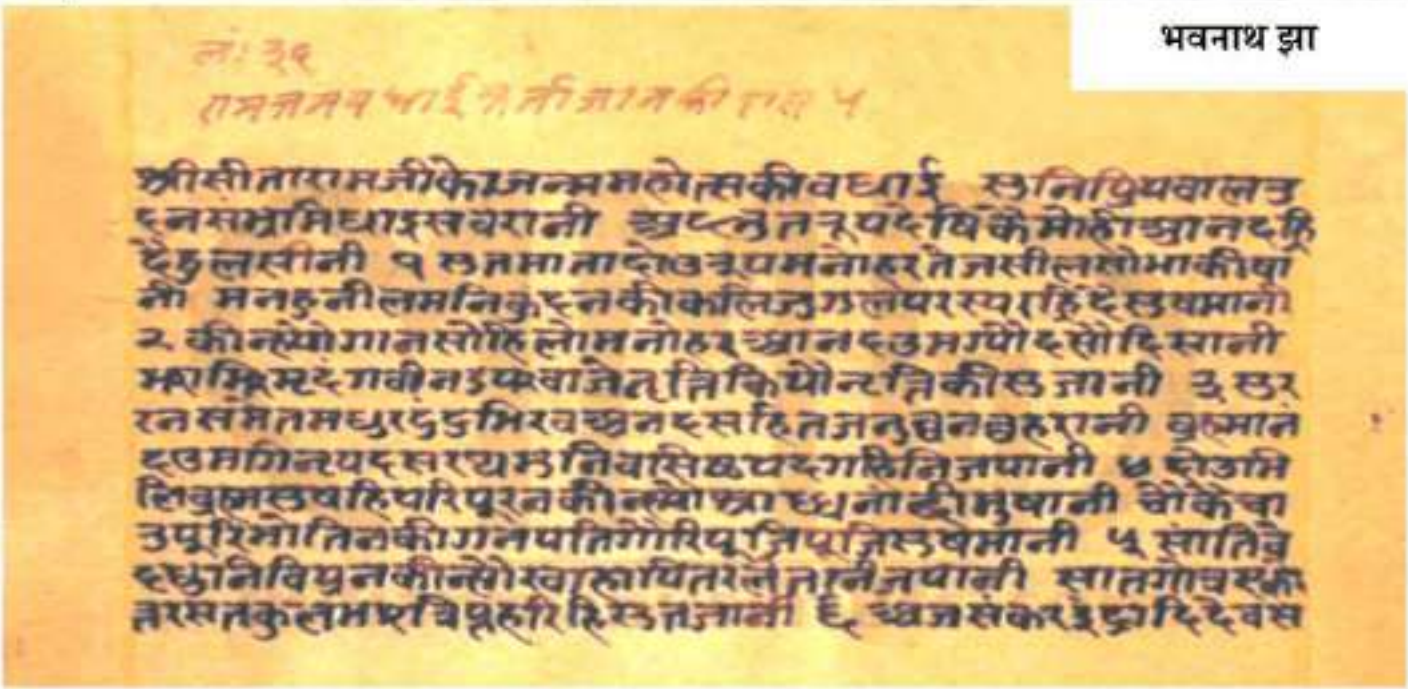

यह पद संग्रह जानकी दास की कृति के रूप में पाण्डुलिपि में Indianmanuscript.com पर "रामजन्म बधाई" के नाम से उपलब्ध हुआ है। इसमें कुल 20 पद हैं, जिनमें 9 पद श्रीकृष्ण की लीला से सम्बन्धित हैं। एक पद में परब्रह्म का वर्णन है। शेष 10 पदों में रामजन्म के अवसर पर अयोध्या नगर के हर्षमय वातावरण का काव्यात्मक वर्णन हुआ है। पदों में संस्कृत की आलंकारिक शैली का विशिष्ट पुट है। कवि ने संस्कृत के अप्रसिद्ध शब्दों का भी प्रयोग कर चारुता लाने का प्रयास किया है। इससे प्रतीत होता है कि इसके कवि जानकी दास संस्कृत के भी विद्वान् रहे होंगे।

अभी तक प्राप्त सूचना के अनुसार रामभक्ति शाखा में अनेक जानकी दास हो चुके हैं। इसमें से ये पद किस जानकी दास के हैं, यह निर्णय करना मेरे लिए तत्काल सम्भव नहीं है। आशा है कि इस विषय पर हिंदी के विद्वान् अग्रतर कार्य करेंगे। अतः यहाँ अभी तक सूचित जानकी दास नामक सन्तों का विवरण देना अप्रासंगिक नहीं होगा।

1. नाभादास के सहतीर्थ जानकीदास[1]

एक जानकीदास नाभादास के समकालीन थे, जो वैष्णव दास के गुरु भी रहे।

2. निरंजनी सम्प्रदाय के जानकी दास[2]

इनके द्वारा साहित्य लेखन का उल्लेख किया गया है, किन्तु किसी रचना का नाम नहीं लिया गया है।

[1] चतुर्वेदी, परशुराम, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, भारती भंडार, इलाहाबाद, 1972ई. (तृ. सं.) पृ. 225
[2] तदेव, पृ. 348

3. बाबरी-पंथ के गोबिंद साहब के प्रथम गुरु जानकीदास[3]

आचार्य परशुराम द्विवेदी ने उल्लेख किया है कि बाबरी पंथ के गोबिंद साहब जब घर छोड़कर निकल गये, तब उनकी पहली भेंट जानकी दास नामक साधु से हुई; किन्तु उन्हें शान्ति नहीं मिली और वे जगन्नाथ पुरी की यात्रा पर निकल पड़े और इसी रास्ते में भीखा साहब से इनकी मुलाकात हुई।

इस प्रकार आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने जिन तीन जानकी दास का उल्लेख किया है, उनकी किसी भी रचना का उल्लेख वहाँ नहीं किया गया है।

उक्त रचना को देखने से इतना तो निश्चित प्रतीत होता है कि इसके कवि रामोपासना में मधुरा भक्ति या रसिक सम्प्रदाय के हैं। उन्होंने श्रीकृष्ण से सम्बद्ध पदों में जिस प्रकार रासलीला का वर्णन किया है, वह मधुरा भक्ति का संकेत है। डा. भगवती प्रसाद सिंह ने रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय पर महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थ की रचना है। इस ग्रन्थ में हमें चार सन्त जानकी दास के नाम से मिलते हैं।

4. अयोध्या के जानकी दास[4]

महात्मा ब्रह्मानंद ने राजपुताना से आकर अयोध्या में विद्याकुंड की गद्दी स्थापित की थी। इसमें स्वामी रामानन्द से 13वीं पीढ़ी पर एक जानकी दास हुए। ये प्रह्लाद दास के शिष्य तथा कान्हर दास के गुरु थे। इसी परम्परा में 17वें महन्त रामलखन दास हुए हैं। इस प्रकार रामलखन दास से पाँचवीं पीठी ऊपर के सन्त जानकी दास हुए हैं। सन्त कान्हर दास के नाम से कुछ पद मिलते हैं, जिनका सम्पादन 'धर्मायण' की अंक संख्या 94 में "जानकीप्रातमंगलम्" के नाम से किया गया है। सम्भव है कि ये जानकी दास यहाँ सम्पादित "रामजन्म बधाई" पदों के प्रणेता रहे हों।

5. गलता के जानकी दास[5]

गलता गद्दी (जयपुर) की परम्परा में भी श्रियाचार्य के शिष्य तथा रामाचार्य के गुरु जानकी दास हुए हैं।

6. रैवासा (शेखावाटी –जयपुर) के जानकी दास[6]

रसिक सम्प्रदाय का यह प्रमुख पीठ माना जाता है। इसके संस्थापक अग्रदासजी थे। इस पीठ में भी ग्रन्थ लेखन की परम्परा रही है। यहाँ केशवदास के शिष्य तथा सहज रामदास के गुरु के रूप में जानकी दास मिलते हैं।

7. टीला द्वारपीठ के जानकी दास[7]

श्रीकृष्ण दास पयहारी के शिष्य टीलाचार्य ने इस द्वारपीठ की स्थापना जयपुर के खेलना-भोलास में की थी। इस परम्परा के सन्त खाकी अथवा मूजिया कहलाते हैं। इनमें गोवर्द्धन दास के शिष्य जानकी दास मिलते हैं।

8. पटना के जानकी दास[8]

डा. भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधव ने अपनी पुस्तक रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना में केवल एक जानकी दास

[3] तदेव, पृ. 552

[4] डा. भगवती प्रसाद सिंह, **रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय**, वि. सं. 2014 (1958ई.), अवध साहित्य मंदिर, बलरामपुर, गोंडा, पृ. 348-349

[5] तदेव, पृ. 334 [6] तदेव, पृ. 334 [7] तदेव, पृ. 336

[8] डा. भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधव, 1997ई. **रामभक्तिसाहित्य में मधुर उपासना**, राष्ट्रभा, परिषद्, पटना पृ. 513

का उल्लेख किया है , जो पटना के किसी राम-जानकी मन्दिर के महंत नत्थूदासजी के शिष्य थे। इन्होंने रामानुज दासजी से शृंगारिक रामोपासना की दीक्षा ली थी। जनश्रुति है कि रैपुरा ग्राम की विवाह-लीला में इन्हें अली-भाव की उपलब्धि हुई थी।

9. वृंदावन के जानकीदास मौनी[9]

रामोपासना के रसिक सम्प्रदाय के कुछ साधु वृंदावन में बस गये थे। ये रामोपासक समान रूप से कृष्ण की भक्ति में भी लीन रहे। इनमें जानकी दास मौनी का महत्त्वपूर्ण नाम है। 'रसिकप्रकाश भक्तमाल' में मौनी जानकीदास का परिचय इस प्रकार दिया गया है-

गोप्यकेलि मत गोप्यरस रसिक सनेही निपुण जस।
अग्रस्वामी रसरीति मति मौनी वृंदाविपिन वसि।।[10]

इस प्रकार उपर्युक्त 9 जानकी दास में से प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रणेता कौन थे, यह गवेषणा का विषय है। इन गद्दियों की परम्परा में प्रसिद्धि इसके निर्णय में सहायक हो सकती है। किन्तु तत्काल रचना की प्रकृति और विषयवस्तु के आधार पर यह रचना वृंदावन वाले मौनी जानकी दास के कृतित्व होने के अत्यधिक समीप है। इसमें श्रीकृष्ण सम्बन्धी पदों मे जो शृंगारिक वर्णन है, वह हमें अनुमान लगाने में पर्याप्त सहायक सिद्ध होते हैं।

प्रस्तुत पाण्डुलिपि का विवरण

श्री मदन मोहन गुप्ता, पूर्व राज्यमन्त्री, मध्य प्रदेश के सौजन्य से इस वेबसाइट पर हजारों की संख्या में पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं। इनसे मैंने दूरभाष से इनकी सम्पादन की अनुमति लेकर गुप्ताजी के प्रति आभार व्यक्त करते हुए इस ग्रन्थ का सम्पादन किया है। पाण्डुलिपि का अपेक्षित विवरण इस प्रकार है-

URL: http://indianmanuscripts.com/search.php?keyword=Ramjanam

नाम- Ramjanam Badhai (रामजनम बधाई)

संख्या- MRE0225

कुल पत्र संख्या- 5, पृष्ठ संख्या- 10

आकार- 6×9.5 ईंच

लिपि- देवनागरी

लिपिकाल- अज्ञात, अनुमानित-18वीं शती

[9] तदेव, पृ. 138

[10] रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ. 119.

लिपिकार- अज्ञात

मूल पाठ

श्रीसीतारामजी को जन्म महोत्सव की बधाई

सुनि प्रिय बाल रुदन सँ भूमि धाइ सब रानी।
अद्भुत रूप देखि कै मोही आनंद हिदै हुलसीनी।।1।।
सुत माता दोउ रूप मनोहर तेज सील सोभा की खानी।
मनहु नीलमनि कुंदन की कलि दुगल परम्पर हिदै सुषमानी।।2।।
कीन्हे यो गान सोहि लो मनोहर आनंद उमग्यौ दसो दिसानी।
झाझि मृदंग बीन ऊपर बौजै नृत्ति कियौ नृत्ति की सुजानी।3।।
सुरन समेत मधुर दुंदुभि रव अनंद सहित जनु घन घहरानी।
ब्रह्मानंद उमगि नृप दसरथ मुनि वसिष्ठ पद गहि निज पानी।।4।।
दोउ मिलि ब्रह्म सुखहि परिपूरन कीन्ह्यौ श्राद्ध नांदी मुषानी।
चौके चारु पूरि मोतिन की गनपति गौरि पुजि पुजि सुषमानी।।5।।
सांति वेद धुनि विप्रन कीन्हौं स्वाहा पितर लेत निज पानी।
सात गोत्र एकोत्तर सतकुल भए तृप्त हरि हित सुत जानी।।6।।
ध्वज संकर इन्द्रादि देव सब पूजि सब पूजि सबहि तन मानस बानी।
पाइअ सीस हरषि नृप दसरथ रानी सुनि आनंद पुलकानी।।7।।
करि अभिषेक तिलक मुनि नायक दियौ गोदान दुजन हित मानी।
'जानकि दास' दुजन आसिष दियौ सुत समेत कुसल राजधानी।।8।। (पद संख्या- 1)

(दोहा। कविता)

इ गुन दोस सब जानत (जानत) सीताराम।
जानकि दास कि विनै सुनि हरिजन चरन प्रनाम।।(पद संख्या- 2)

श्री रघुनाथ के बाल अवस्था के चरित्र ता समै के पद

(राग भैरो)

उचार नैन श्री राघौ देषि वदन सषि सब मातु।।टेक।।
जगमग जडित पलंग मे पौढे, रवि विधु नषत लजातु।।
कुंचित केस भाल में लटकि रहे, पंक्ति मधुप की लजातु।।1।।
नील कंज दोउ नैन मनोहर, चितवनि मन हरि जातु।।2।।
भौंहे रुचिर छवि धारी सो भामन भव धनुष लजातु।
नासा अधर चिबुक मनोहर हथुलि अरुन लजातु।।3।।
स्रवन कपोल कंध कंठ छवि उर भृंग चरन सुहातु।।4।।(पद संख्या– 3)

कठिन शब्दार्थ-

रवि- सूर्य, **विधु**- चंद्रमा, **नषत**- नक्षत्र- तारागण, **कुंचित**- घुंघराले, **भाल**- मस्तक, **मधुप**- भौंरा, **कंज**- कमल, **भामन**- भावन- शोभित, **भव धनुष**- शिव का धनुष, **हथुलि**- हथेली, **अरुण**- प्रातःकाल में पूर्व दिशा की आभा, **स्रवन**- कान, **कपोल**- गाल, **कंध**- कंधा, **भृंग**- भौंरा

(राग भैरेमी (भैरवी)

दोउ कर कंजनि लिए राम को, निरखति नैन लगाई।
मानहु अरुन कंज दोउ ऊपर, मधुकर रह्यौ लोभाई।।1।।
बेसरि चमकि देखि कै रघुवर, विहसि वदन किलकाई।
चुंबन करति वदन विधुइया, चंद वदनि पुलकाई।।2।।
मुष सौं मुषहि लगाइ प्रेम सौं, अधरि अमृत रस पाई।
बाल सनेह राम रंग रंगि गइ, पल पुहिमी को पाई।।3।।
सुत जननी को रूप निरषि सषि तण की सुधि बिसराई।
सषिन समेत राम जननी पग 'जानकि' माथ नबाई।।4।। (पद संख्या– 4)

बेसरि- नाक का गहना, **विधुइया**- सुन्दरियाँ, **चंद वदनि**- चन्द्रमा के समान मुख वाली सुन्दरियाँ, **पुहुमी**- पूर्णिमा, **निरखि**- देखकर, **तण**- तन- शरीर

(रागनी अहला)

लीन्हें मातु निज गोदिअ राम को।।टेक।।
परम विचित्र पलंग में बैठी, करति परकास महल को।।1।।
मनहु दामिनि बिच नील बदलिआ, सोभा देति जननि को।
पुलक प्रफुलित गात जननि सुष, निरषति चंद वदनि को।।2।।
सुष जल अमृति बरषि लोकन में, हंस भुसुंडि हिदै को।
सिव सनकादि जो रौद्र रिषी जन, मनहि लग विचरन कमल को।।3।।
राम प्रेम रस छकी जननि बधौं, सनेह श्रीराम सुतहि को।
सुत माता के चरन कमल में 'जानकि' मन मधुकर को।।4।। (पद संख्या– 5)

परकास- प्रकाश, **दामिनि**- बिजली की चमक, **बदलिआ**- बादल, **पुलक**- हर्ष से रोआँ खड़ा होना,

(राग सारंग)

कामना के देने वाले कामद गिरि हौं।
कंचन रूप तिहारो गिरिवर, चारिहु वेद जस गाइहों।।1।।
बडबाक्रित है रूप तिहारो, उर मधि रथ नाथ नाइहौ।
मधिम सर एक रुचिर मनोहर मनि सोपान बैठाइहों।।2।।
निर्मल जल सुगंध सौ पूरे आठो कमल फुलाइहौं।
गुंजत मधुप पराग मत्त रस जनु गंधर्व गबाइहौ।।3।।
सर चहु पास विचित्र विविध, बागै रुचिर लगैइहौ।

पारिजात मंदारक फुलउ बागन परम सोआइहौ।।4।।
मल्लिकादि गुलाब फूल सब त्रिविध समीर बहाइहौ।
कोकिल कीर चकोर हंस कल सर बागन में बोलाइहों।।5।।
सर पश्चिम समीप हरि मन्दिर प्राची मुषहि बनाइहौं।
जांबूनद सुवर्ण को मन्दिर विविध मनिन सो जड़ाइहहौ।।6।।
ताके माझे सिंहासन सोभित कोटिन सूर्ज जलाइहौ।
ता में सीताराम मनोहर नील मेघ दामिनि छवि छाइहौं।।7।।
भरत सत्रुहन लछिमन मैआ सक्तिन सहित परम छवि पाइहौ।
अज इंद्रादि देव अस्तुति प्रिय 'जानकि' राम चरन लपटाइहौं।।7।। (पद संख्या– 6)

बडबाक्रित- समुद्र के समान, **मनि सोपान-** मणि से बनी सीढ़ियाँ, **उर मधि रथ-** हमारे हृदय के बीच स्थापित रथ, **आठो कमल-** अष्टदल कमल (साधना में हृदय चक्र में आठ कमल होते हैं), **पराग-** फूल के परागकण, **गंधर्व-** देवताओं के गायक, **रुचिर-** सुंदर, **पारिजात-** स्वर्ग का फूल, **मंदार-** स्वर्ग का फूल, बागन- बगीचे में, **कीर-** सुगा, **प्राची मुषहि-** पूरव दिशा की ओर मुँह कर, **जांबूनद-** सोना, **सुवर्ण-** सोना, **मनिन-** मणियों से, **कोटिन-** करोड़ों की संख्या में, **छाइहौं-** स्थापित करना चाहूँगा, **सक्तिन सहित-** शक्तियों- पत्नियों के साथ, **अज-** देवता

(रागिनी श्री)

राजी राजी सबलिआ तो से सखिआ।।टेक।।
मृदु मुसुकानि बिलोक निआरी, अरुन कंज दल अषिआ।।
कुंडल स्रवन कपोल झूलति, जटित लाल मनि मोतिआ।
'जानकि' सषि राजी पिअ तुम सौं, छवि प्रिय दिल मे वसिआ।।2।। (पद संख्या– 7)

सबलिया- साँबले रंग वाला, **मृदु-** कोमल, **बिलोक-** देखना, **निआरी-** निश्चय कर, **अरुन कंज दल अषिआ-** लाल कमल की पंखुड़ी के समान आँखें, **मनि मोतिआ-** मणि एवं मोती,

सुरति मेरी लागी रघुरैआ।।टेक।।
देषत बाग तम सित पीतम, प्रीति लागी रसरैआ।।
सुंदर बदन देखाइ मनोहर, हसनि मधुर ललितैआ।।
पिअ पीतम मेरो राम पिआरो, 'जानकि' हरिसरनैआ।। (पद संख्या– 8)

रसरैआ- रसों के राजा, **हरिसरनैआ-** हरि की शरण का इच्छुक।

(रागिनी पूर्वी)

तुरंग सबारी देषौ दसरथ लाल।।टेक।।
माइन सहित तुरंगन सोभित भूषन वसन जडित मनि लाल।।1।।
नील मेघ बरही परे सोभित, उरउ भानु, पूर विधु बाल।
दामिनि सहित कामघन राजत छिटिकि रही उडगन माल।।2।।
यह छवि देषि अवधपुरी जन लगे सराहनै निज भाल।

झुकि पन मार्गन देषि परम छवि हिय हरषी सब बाल।।3।।
राम सवासव निज निज घोड़ेन, गतिन धाइ कियौ हर्ष राम लाल।
'जानकि दास' ध्यात पहु पहु सुंदर देषु हरषिही हरि होसि निहाल।।4।। (पद संख्या– 9)

तुरंग- घोड़ा, **बरही**- बर्हीं- मोर, **पूर विधु**- पूर्ण चन्द्रमा, **कामघन**- कामनाओं की वर्षा करानेवाला बादल, **उडगन**- तारागण, **सवासव** - इन्द्र (राजा दशरथ) के साथ, **निज निज**- अपने-अपने, **धाइ कियौ**- दौड़ पड़े, **पहु**- प्रिय, **होसि**- होते हैं, **निहाल**- धन्य

कृष्ण-गीत

(रागिनी गौरी)

देषौ सषि आजु मोहन आवत, गौवन के पाछे।।टेक।।
मोर मुकुट मरकाक्रित कुंडल, झलक कपोल प्रियाछे।
माथ तिलक, भौंह प्रिय लोचन, नासा अधर चिबुक रद आछे।।2।।
दहिने कर मुरली अधरन पर, बाए लकुटिया आछे।।3।।
उर वनमाल किंकिनि पग नूपुर, जेठियन कछा काछै।
'जानकि दास' यह रूप सुहावन, गोपिन आनंद आछे।।4।। (पद संख्या– 10)

गौवन- गायों के, **मकराक्रित**- मकर के आकार का, **नासा**- नाक, **अधर**- होठ, **चिबुक**- टुड्ढी, **रद**- दाँत, **लकुटिया**- छोटी लाठी, **किंकिनि**- पाँजेब, **जेठियन**- बड़े लोगों की तरह, कछा- अधोवस्त्र

(रागनी कान्हा, रास)

स्यामा दी मै पाइ परीदा।
वा की बोलनि वा की चितवनि वा की नेह लगी दा।।
लोक वेद मरजाद छोडि तुवक रति तप करी दा।।
कामा रसिक ब्रषभान लाडिली वचौ निठुराई करी दा।।
'जानकि दास' विचार करी हम, तुव संग भवन परी दा।। (पद संख्या– 11)

वा की- उसकी, **तुवक**- तुम्हारा, **रति तप**- आसक्ति रूपी तपस्या, **वचौ**- वचन से, **परी दा**- पड़ी रहूँगा।

(रागनी इमन)

सुनि होवन प्रिय मातु, आनंद हिदै हुलसानी।
पुलकि सप्रेम अध्यान कियौ सुचि, करि शृंगारहि ए सुषमानी।।1।।
पूरन ब्रह्म को गोद मे लै करि, चंदवदनि मुसुकानी।
'जानकि दास' सुत सनेह छकि, चरनकमल रति मानी।।2।। (पद संख्या– 12)

(घाटो)

मेरे कान्हा की विरही मुरलि आवा जी।
बोली राधा सब सषिन सौ तीनि तीनि ग्राम सुर साजी।
जे विरही मनमोहन केरी करि सबहिन को राजी।।1।।
विरही को पीर कठिन है, सुनु सषि और करे का काजी।
'जानकि दास' प्रिया मनमोहन अधर पान ने नाजी।। (पद संख्या– 13)

तीनि ग्राम सुर- संगीत के अनुरूप तीन ग्रामों का स्वर, **काजी**- लेखा-जोखा रखने वाला,

(रागनी पीलू)

सषि कुँवरी अभिमानी भइ, सैंआ कन्हैआ को बसि में लई।
टेढो कुँवर, कर्म हाटक धन, यह गुन साचौ मोल दई।।1।।
व्रज मथुरा में सोर व्रंदावन, सकल जगत पहचानई।
एसो चाहिए सषि झूठन को, 'जानकि' हरि तेहि प्रीति नई।।2।। (पद संख्या– 14)

बसि में लई- अपने वश में कर लिया, **कर्म हाटक धन**- कर्म रूपी सोना का धन,

(गजल)

हमसे तुमसे बचा परोछे, क्यो करोगे बातिआ।
जाओ उसी पास में, जँह रहे सारी रातिआ।।
हम तो जानी कान्ह तुमको, तुव देहु सिपारिआ।
भालौ मे महावर दिए, आषौं बीचि पीकिआ।।2।।
हम्मे तुमसे यारी किइ, बिछाइ नर्म सेजिआ।
अंजन अधरौ लगाइ, आयौ कान्ह मोरिआ।।3।।
'जानकि दास' माधौ सबी, सरन होति हारिआ।।
प्रेम सहित उर लगाइ, मोहन बलिहारिआ।।4।। (पद संख्या– 15)

भालौ मे महावर दिए- माथे पर महावर लग जाना, (चरण पर मस्तक रखने से), **आषौं बीचि पीकिआ**- आँखों के बीच पान का पीक (आँखों का चुंबन लेने से), **अंजन अधरौ लगाइ**- होठों पर अंजन लगाकर आये हो (आँखों के चुंबन से),

(लावनी)

मन में करत विचार सुदामा चले जात मधुपुर को।।टेक।।
गजरथ है रथ तुरंग पयादे, षडा छबीला रछया को।
द्वारपाल छरीदार द्वार में, केहि विधि दरसन जदुवर को।।1।।
फाटे वसन, देह है दुबरी, हौ राजा सब दीनन को।
दीननाथ यह नाम प्रबल है, एहि विधि दरसन जदुवर को।।2।।
बड़ी क्रिपा कर नारि हमारी, जेहि पठायो प्रभु दरसन को।।
आनंद उमंगि उमंगि उर उमगत, सीस नवायो हरिपुर को।।3।।

सकल धर्म मरजाद बँधी है, छींद नहीं है ब्राह्मन को।
दीननाथ हरि नाम सुमिरि कै, चले गये प्रभु महलन को।।4।।
रुकुमिनि सहित तहाँ हरि बैठे, देख्यौ तब निज मीतहि को।
प्रेम बिबस उठि धाइ ल्याइ उर, जल अन्हवायो लोचन को।।5।।
कर गहि निज आसन बैठायो, आग्या दीन्ही लछमी को।
कंचन थार हर्षि ल्याई जल, गडुवा सुभ सोने को।।6।।
सुष जुते पाइ धोइ जदुनंदन, जल सीच्यौं तन मन्दिर को।
रुकुमिनि सहित सीस जल राष्यौ, तोष्यौ सब विधि दुजवर को।।7।।
'जानकि दास' भेट जौ लीन्हें, सेच्यौ माधौ निज कर को।
प्रेम समेत पाइगे मोहन, पठ्यौ मीतहि निज गृह को।।8।। (पद संख्या– 16)

गजरथ- हाथी का रथ, **तुरंग**- घोड़ा, **पयादे**- सिपाही, छींद- (छुद्दी-छदाम- सबसे छोटे मूल्य का सिक्का), **अन्हवायो**- मँगाया (आँखों में आँसू आ गये), गडुवा- तकिया,

(सीताराम युगल गीत)

(रागनी देस)

सषी री कोई राम को बताइ दै।
सिय सुकुमारि जुगल भर वारे इन आषिन में देषी दे।
लषन लला सिय प्रान दुलारी जानकि हरि को मिलाइ दे।।2।।
देस नेह मोरा लागा, दसरथ लाला सौं।
काहे करौ का सौ कहौ, दिल की भारी।।
रघुवर सौ मन अटक्यौ, कहौ प्रिय बाला सौं।।1।।
वा की चितवनि वा की बिहसनि, वा की बोलनि धारि।
गाफिल हमको करि दियौ, माधौ नजरिआ माला सौं।
'जानकि' हम आसिक भइ, राम कटाच्छहि देषि।
चित्त हमारो गड़ि गयौ, वैजन्ती वनमाला सों।।2।। (पद संख्या– 17)

गाफिल (फारसी)- बेसुध, **आसिक**- प्रेमी, कटाच्छहिं- कटाक्ष से (तिरछी नजर से), **वैजन्ती माला**- वैजयन्ती की माला जो श्रीराम के हृदय पर है।

(श्रीकृष्ण गीत)

(रागनि सोरठ)

राधा विन मोहन अटकै होहि प्रिया तुम्ह को।
छोड्यौ सारी रतिआ भटकै केहि विधि तुम विनु रह सकरीजै।।
तान तुम्हारी कसके सुनि प्रिय वचन।

प्रगट भई धारी गलबहिआ धरि लटकै।।
'जानकि दास' प्रिया माधौ दोउ हो सेवक तुवे पद के। (पद संख्या– 18)

वंसीवट में आजु नव चैत कन्हाई बजत मृदंग वीन सुर नाई।
वंसी ताथेइ थेइ गति नचि उपजाई।
रहस विलास करत गोपिन संग बीजमन हसत छवि समुदाई।
चलौ वेगि सषि कान्ह के ठिग में 'जानकि' हरि गोपी पग सिरु नाई।।2।। (पद संख्या– 19)

परब्रह्म-ज्ञान

मुजे भुली डगरि आ बता वो रुना सुष सागर राम रही।
भूलि गयौ मैं जडे माया बस दिन अरु रैन प्रकार करी।।1।।
सड़क छोड़ाई चौबिस में डारति बाँह पकरि कै मासे लरी।
'जानकि दास' सरन होसि पंगु तिज वाने की लाज करी।।2।। (पद संख्या– 20)

सीताराम।।

***

लेखकों से निवेदन

'धर्मायण' का अगला वैशाख, 2078 का अंक मातृ-शक्ति विशेषांक के रूप में प्रस्तावित है। इसके लिए दिनांक 20 अप्रैल, 2021 तक विद्वत्तापूर्ण आलेख आमन्त्रित हैं।

वैशाख मास को मातृशक्ति-स्वरूपा जानकीजी का आविर्भाव मास माना गया है। अत: उन्हीं के चरण-कमलों में समर्पित यह अंक प्रस्तावित है। हमारे सनातन धर्म में नारी-शक्ति पर पर्याप्त विमर्श हुआ है। तन्त्र ने तो कुमारी को जगन्माता के रूप में प्रतिष्ठा दी है। वास्तविकता यही है कि सभी सम्प्रदायों ने सकल संसार की अधिष्ठात्री देवी के रूप में नारी-शक्ति की सत्ता को स्वीकार किया है। श्रुति, स्मृति, पुराण तथा अन्य विशिष्ट ग्रन्थों में नारी के स्वरूप का विवेचन इस अंक का केन्द्रीय विषय प्रस्तावित है।

वर्तमान अंक में व्यवहृत सन्दर्भ की शैली में लिखित सन्दर्भ के साथ शोधपरक आलेखों का प्रकाशन किया जायेगा। अपना टंकित अथवा हस्तलिखित आलेख हमारे ईमेल dharmayan-hindi@gmail.com पर अथवा ह्वाट्सएप सं- +91 9334468400 पर भेज सकते हैं। प्रकाशित आलेखों के लिए पत्रिका की ओर से पत्र-पुष्प की भी व्यवस्था है।

श्रीरामपट्टाभिषेकविधि

(प्रथम बार पाण्डुलिपि से सम्पादित)

डा. ममता मिश्र दाश*

दक्षिण भारत के आळवार सन्तों की परम्परा में भी ससीत-राम-लक्ष्मण की पूजा-परम्परा मुखर रही है। कर्मकाण्ड के सन्दर्भ में वहाँ एक विशेष प्रकार के अभिषेक का विधान है- श्रीरामपट्टाभिषेक। अभीतक यह विधि अप्रकाशित थी। हमारे अनुरोध पर आदरणीया डा. मिश्र दाश ने पहली बार इसका सम्पादन किया है। इसका अनुवाद हम अगले अंक में प्रकाशित करेंगे, जिससे उत्तर भारत में भी अभिषेक की इस विशिष्ट विधि का लाभ मिल सके।

दक्षिण भारत में श्रीरामपूजा की परम्परा बहुत सुदृढ़ रही है। वैष्णव-परम्परा अपनी बहुत सारी शाखा प्रशाखाओं के साथ कल्पवृक्ष की तरह अपनी जड़ के साथ विस्तृत है। प्रारम्भिक रूप में यद्यपि वैष्णव परम्परा ही है, लेकिन यह परम्परा श्रीविष्णुपूजा, श्रीकृष्णपूजा, श्रीरामपूजा, श्रीनरसिंह-पूजा इत्यादि के रूप में प्रचलित है।

दक्षिण भारत के वैष्णव आचार्य, जो अळवार नाम से ज्यादा प्रसिद्ध हैं और पूरी दुनिया में वैष्णव धर्म प्रचार में कारणभूत रहे हैं, इन आचार्यों के द्वारा लिखी गयी दिव्यप्रबन्ध अत्यन्त भक्तिपूर्ण होने के साथ साथ दार्शनिक रूपमें बहुत सुदृढ़ हैं। वैष्णव विश्वास के 'दिव्यप्रबन्ध' में श्रीविष्णुदेव के भिन्न-भिन्न अवतारों का तात्त्विक विश्लेषण किया गया है। यहाँ पर श्रीराम की पूजा और श्रीरामसम्बन्धी प्रबन्धों का अध्ययन और अध्यापन तथा दार्शनिक विश्लेषणों को लेकर बहुत सारे ग्रन्थ रचित हुए हैं।

इस प्रबन्ध में श्रीरामपट्टाभिषेक की विधि और व्यवस्था ग्रन्थों आधार पर की गयी है। श्रीराम की बहुत सारी पूजाओं में से श्रीरामपट्टाभिषेकविधि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान है, जिसका उपचार उचित रूप में करने के लिये कुछ ग्रन्थ भी लिखे गये हैं। ये सारे ग्रन्थों की लिपि प्रतिलिपि प्रायशः दक्षिण भारत में ही उपलब्ध हैं। New Catalogues Catlogurum, Vol. XXIV, Ed. By Siniruddha Dash, published by University of Madras, 2011 के आधार पर इस निबन्ध में श्रीरामपट्टाभिषेकविधि के नाम पर उपलब्ध पाण्डुलिपियों का विशेष विवरण देने का प्रयत्न किया जा रहा है।

New Catalogus Catlogurum, Vol. XXIV आधार पर यह तो तय है कि, श्रीरामपट्टाभिषेक विधि के नाम पर लगभग सारे ग्रन्थ दक्षिण भारत में ही उपलब्ध हैं। सिर्फ India Office library में एक ग्रन्थ सुरक्षित है, जो नन्दीनागरी लिपि में भी है, अर्थात् दक्षिण भारत से ही संगृहीत होकर वहाँ उपलब्ध है। एक पाण्डुलिपि बनारस के सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन (सं 64103) एक ही पाण्डुलिपि उपलब्ध है। श्रीरामपट्टाभिषेकविधि के नाम पर लगभग 31 पाण्डुलिपि केवल मैसूर के Oriental Research Institute में हैं, जबकि कुल संख्या में लगभग 34 पाण्डुलिपि उपलब्ध हैं। ये सारी पाण्डुलिपियां नन्दीनागरी, तेलुगु, कन्नडा लिपियों में उपलब्ध हैं। Government Oriental Manuscripts Library, Chennai में भी 5 पोथियां उपलब्ध हैं, जो देवनागरी और ग्रन्थ लिपि में उल्लिखित है।

*संस्थापक सचिव, प्रो. के.वी. शर्मा रिसर्च इंस्ट्च्यूट, अड्यार, चेन्नई

परम्परा के अनुसार रामायण पाठ समाप्त होने पर श्रीरामपट्टाभिषेक का अनुष्ठान होता है और इस पट्टाभिषेक को पारम्परिक नियम के साथ मनाने की विधि रही है। इसीलिये दक्षिण भारत में इतनी सारी पाण्डुलिपियां इस विषय के आधार पर उपलब्ध हैं।

इस आलेख में श्रीरामपट्टाभिषेक के लिये कैसी विधि बनायी गयी है, उस पाठ के कुछ सारांश पोथियों से समुद्धार कर दिया जाता है। यद्यपि आम तौर पर इन ग्रन्थों में उल्लिखित विषयवस्तु समान है, लेकिन कहीं-कहीं इस पाठ का आधार भिन्न-भिन्न दिया गया है।

- D. 3776 (GOML) from Agastyasaṁhitā, script Granth
- D. 5798 (GOML) from Umāsaṁhitā, Script - Grnatha
- D. 3775 (GOML) no source, script – Devanāgarī
- R. 4921 (GOML) no source, script – Grantha
- R. 5694 (GOML) no source, script – Devanāgarī (this is a copy of number R. 4921)
- वैसे Mysore Oriental Manuscripts Library (Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts, Vol. XVI.) में जो 31 पाण्डुलिपियां इस विषय पर उपलब्ध हैं, उनमें से 18 पाठ के कुछ source उपलब्ध नहीं है। इनमें से सिर्फ 6 पोथियों के अतिरिक्त सभी तालपत्र पर लिखित हैं-
- 13529, source - Brahmasiddhānta, script – Nandināgrī
- 13530, source – Rāmārcanacandrikā, script – Grantha, इसके अतिरिक्त रामार्चनचन्द्रिका के आधार पर और दो पाण्डुलिपियाँ भी उपलब्ध हैं।
- 13518, source – Skandapurāṇa, script – Nandīnāgarī. इसके साथ और चार पाण्डुलिपियाँ भी स्कन्दपुराण के आधार पर उपलब्ध हैं।
- 13536, source - Hiraṇyagarbhasaṁhitā, script – Kanada, इसके साथ और चार पाण्डुलिपियाँ भी हिरण्यगर्भसंहिता के आधार पर उपलब्ध हैं।
- 13339, source Pārijātasaṅgraha, script Kannada and Devanāgarī

यद्यपि बहुत सारे पाठ उपलब्ध हैं, पर लगभग पाठ कुछ ऐसा प्रारम्भ हुआ है –

शुभे दिने सुनक्षत्रे चन्द्रताराबलान्विते। वाचकस्य च रामस्य शुभऋक्षेऽभिषेचयेत्॥
स्वगृहस्योत्तरे भागे यागमण्डलमारभेत्। चतुर्द्वारं पताकांश्च सुवितानं सुतोरणम्॥
मनोहरं महोत्साहं पुष्पाद्यैः समलङ्कृतम्। शङ्खचक्रहनूमद्भिः प्रकारैः समलङ्कृतम्॥
गरुत्मनि च्छा(शा?)र्ङ्गबाणैश्च दक्षिणे समलङ्कृतम्। गदाखड्गाङ्गकैश्चैव पश्चिमे समलङ्कृतम्॥
पूर्वस्वस्तिकमिश्रैश्च कुबेरं समलकृतम्।

एक पाण्डुलिपि (GOML. No. D. 3775) में आद्य भाग में पाठ कुछ ऐसा उपलब्ध है –

वसिष्ठो वामदेवश्च जाबलिरथ काश्यपः। भृगुः कण्वः पुलस्त्यश्च कपिलः पिप्पलस्तथा॥

X x x

एतेऽन्ये ब्रह्मवेत्तार ऋषयस्समुपागताः। आलोच्य सर्वशास्त्रणि निगमागमसंहिताः॥

विधानं तेऽब्रुवन् विप्रा रामपट्टाभिषेचने। सुदिने शुभनक्षत्रे चन्द्रताराबलान्विते॥

x x x

मध्ये ब्रह्ममये पीठे सीतया सहितं विभुम्। प्रतिमायां समाकारं कृत्वा कुम्भे निधाय च॥

वसनाभ्यां समाच्छाद्य यजेद् वेदोक्तमार्गतः। वाचको मङ्गलस्नानं सपत्नीकस्समाचरेत्॥

प्रारम्भ के कुछ पाठ से ज्ञात होता है कि रामायण वाचक या पाठक का अत्यन्त सत्कारपूर्वक अभिनन्दन कर के, श्रीराम के पट्टाभिषेक का अनुष्ठान करना चाहिये। कुड पाठ ऐसा भी है कि जो रामायण वाचक हैं उन्हें ही श्रीराम के रूप में आह्वान करना चाहिये -

विधिज्ञं राममन्त्राणां राममन्त्रैक याजकम्। आहूय भक्त्या संपूज्य विनयात् प्रार्थयेत्ततः॥

पट्टाभिषेचनं कुर्वे श्रीरामस्य द्विजोत्तम। तत्राचार्यं वृणे त्वान्तु रामोऽसि त्वं च मे नमः '

एक और पाठ भी उपलब्ध है जहां आचार्य को श्रीराम के रूप में मानकर स्वागत किया जाता है –

मया प्रतिदिननियमाचरितरामायणपारायणसमग्रसम्पूर्णफलावाप्त्यर्थं काण्ड-सर्ग-श्लोक-श्लोकार्द्ध-पादादि -कृत्स्नसाङ्गतफलसिद्ध्यर्थं श्रीसीतारामप्रीत्यर्थं श्रीरामपट्टाभिषेचनकर्तृकाम शान्त्यर्थं पुण्याहवाचनं करिष्ये, यथाविधि पुण्याहं कृत्वा आचार्यान् वरयित्वा-

पट्टाभिषेचनं कुर्वे श्रीरामस्य द्विजोत्तम। तत्राचार्यं वृणे त्वान्तु श्रीरामोऽसि त्वमेव हि ॥

इसके पूजा के दिवस, तिथि, नक्षत्र और चन्द्र की स्थिति शुभ स्थान पर होनी चाहिए। घरके उत्तर भाग में यागमण्डप निर्माण कर चारों तरफ द्वार बनाकर सारे द्वारोंको पताकाओं के साथ अलङ्कृत करना चाहिए। चार या आठ या द्वादश वेदपाठी ब्राह्मणों को निमन्त्रित कर उनको अपने हाथ से तैल लेपन कराकर उनका स्नान करा कर उन सबको नूतन परिधान से अलङ्कृत करना चाहिये। पूजा के प्रारम्भ में चार सुवर्ण कलश में तीर्थ नदियों से जल संग्रह कर चारों दिशाओं मे स्थापन करना चाहिये। ये सारे काम श्रीराम की स्तुतिपूर्वक किया जाना है (चिन्तयन् राघवं हृदि।

हिरण्यगर्भसिद्धान्त के आधार पर पूजा कुछ ऐसी रही है –

दम्पती मंगलस्नानं कृत्वा पूर्वोच्चरिते एवं गुणेत्यादितिथौ श्रीरामपारायणाङ्गपट्टाभिषेकाङ्गभूतं नान्दीपूजाख्यं करिष्यमाणः ---- आदौ स्वस्तिपुण्याहवाचनं करिष्ये।

स्कन्दपुराण के अन्तर्गत श्रीशिवरौच्यकसंवादोक्त के प्रकार में पूजा विधि कुछ ऐसी है –

'अथ स्कन्दपुरणोक्तमहासाम्राज्यपट्टाभिषेकविधिस्तत्प्रयोगश्च निरूप्यते।- अथातो महासाम्राज्यपट्टाभिषेकविधिं व्याख्यस्यामः श्रीरामायणस्य अष्टोत्तरशतपारायणानां चतुर्विंशतिपारायणानां वा कर्त्ता श्रीरामभक्तः ----- श्रीशिवरौच्यकसंवादोक्तप्रकारेण मण्टपनिर्माणादिं कुर्यात्। '

ये सारी पूजाएँ निष्काम होकर भी करनी चाहिये। इसीलिये अन्त में बताया गया है कि –

अर्थसिद्धिः सकामानः सर्वं तन्निष्फलं भवेत्।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रुत्वा रामायणं बुधः निष्कामतोऽतिभक्त्यैव पूजयेद्रघुनायकम्।

अन्त में ब्राह्मणभोजनादि की व्यवस्था भी है।

ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात् आशिषो वाचयेदथ। एवं कृत्वा विशेषेण सर्वान् कामानवाप्नुयात्।

इस श्रीरामपट्टाभिषेक के अतिरिक्त श्रीरामपूजाकल्प, श्रीराममानसपूजाविधि, रामायणजपविधि, रामायण-पारायणक्रम, श्रीराम के भिन्न भिन्न स्तोत्र जैसे बहुत सारी पाण्डुलिपियाँ दक्षिण भारत की श्रीरामपूजा और श्रीरामसम्बन्धी ग्रन्थों की पठन-पाठन परम्परा के बहुल व्यवहार को दर्शाता है।

मूले कल्पद्रुमस्याखिलमणिविलसद्रत्नसिंहासनस्थं
कोदण्डद्वन्द्वबाणैर्ललितकरयुगेनार्पितो लक्ष्मणेन।
वामाङ्कन्यस्तसीतं भरतधृतमहामौक्तिकच्छत्रकान्तिं
शत्रुघ्नं चामराभ्यां विलसितमनिशं रामचन्द्रं भजेऽहम्॥ (D. GOML 18016)

मूल पाठ

स्रोत : R. 5694 (SR. 3082) Government Oriental Manuscripts Library, Chennai
Rāmapaṭṭābhiṣeka

श्रीरामपट्टाभिषेकविधिः

शुभे दिने सुनक्षत्रे चन्द्रताराबलान्विते।वाचकस्य च रामस्य शुभऋक्षेऽभिषेचयेत्॥
स्वगृहस्योत्तरे भागे यागमण्डलमारभेत्।चतुर्द्वारं पताकांश्च सुवितानं सुतोरणम्॥
मनोहरं महोत्साहं पुष्पाद्यैः समलङ्कृतम्।शङ्खचक्रहनूमद्भिः प्राकारैः समलङ्कृतम्॥
गरुत्मांच्छार्ङ्गबाणैश्च[1] दक्षिणे समलङ्कृतम्।गदाखड्गाङ्गकैश्चैव पश्चिमे समलङ्कृतम्॥
पूर्वस्वस्तिकमिश्रैश्च कुबेरं समलकृतम्।मध्ये हस्तचतुष्काढ्यं वैदिकायतमायताम्॥
विचित्रनृत्यवाद्यैश्च [गानादिर] ससं[यु]तम्।पुण्याहं वाचयेत्तत्र विद्वद्भिः प्रीतिमानसैः॥
ततस्सङ्कल्पयेद्धीरो रामपट्टाभि[षे]चनम्।करिष्य इति तत्रादौ आचार्यं वरये[द्]द्विजम्॥
दान्तैः कुटुम्बिनं विप्रं वेदशास्त्रविशारदम्।श्रीरामपूजानिरतं सुशीलं दम्भवर्जितम्॥
विधिज्ञं राममन्त्राणां राममन्त्रैक [2]याजकम्।[आहू]य भक्त्या संपूज्य विनयात् प्रार्थयेत्ततः॥
पट्टाभिषेचनं कुर्वे श्रीरामस्य द्विजोत्तम।तत्राचार्यं वृणे त्वान्तु रामोऽसि त्वं च मे नमः॥
चतुरोऽष्टौ द्वादशा वा अभिषेकार्थमादरात्।द्वारेषु वेदपाठार्थं वरयेद् ब्राह्मणांस्तथा॥
ततः स्वाद्यैः गतान्विप्रान् स्नापयित्वा ततस्स्वयम्।तैलेनाभ्यज्य च स्नायात् चिन्तयन् राघवं हृदि॥
गन्धपुष्पाक्षतैः वस्त्रैः पूजयेत्तान् द्विजोत्तमान्।चतुर्भिः कलशैः स्वर्णैः तीर्थं नद्याः समाहृतम्॥
चतुर्दिक्षुन्यसेत्तीर्थं [तथा ना]नानदीजवात्।गन्धपल्लवरत्नाद्यैः माल्यैर्वस्त्रैरलङ्कृतान्॥
कलशान् स्नापयेद्धान्ये यूपस्त इति मन्त्रतः।कलश [मु]त्तरदिग्भागे त्वौदुम्बरविनिर्मितम्॥
[पुष्पा]दित्रयमास्थाय हरिद्रा पुष्पशोणितम्।वसवस्वागायत्रेण छन्दसेत्यादि मन्त्रतः॥

1. गरुत्मनि च्छा(शा?)र्ङ्गबाणैश्च 2. जा(या?)जकम् 3. वि(द्वि?)जोत्तमान्

तत्र संस्थाप्य तन्मन्त्रैः युतं दधि मधूत्तमम्।प्रागाह्य कुम्भकलशन्तु स्थाययेच्छङ्खपुष्पकम्॥
पूजाद्रव्यादिकं[4] [पीठे]स्थापयेत् स्वस्य वामतः।नवधान्यानि रत्नानि सर्वबीजौषधानि च॥
(स)क्षीराणां वृक्षषण्णां[5] कुम्भं तज्जलपूरितम्।कुङ्कुमागरुगन्धानां पात्राणां विविधानि च॥
हरिद्राक्षतपात्राणि पुष्प[फलै]श्च शोभिताः।छत्रचामरशङ्खाश्च स्थापयेत्सुसमाहितः॥
औदुम्बरं भद्रपीठं सर्वालङ्कारशोभितम्।पश्चिमे कलशानान्तु स्थापयेद्ध्रुवमन्त्रतः॥
दर्पणादीनि मा[ला]श्च फलानि विविधानि च।दीपान् प्रज्वालयेत्तत्र[6] चतुर्दिक्ष्वतिशोभितान्[7]॥
शङ्खस्फटिकपात्राणि पूर्णकुम्भाश्च शोभितान्।विधिवत्सर्वतोभद्रं वेदिकापरिपूरितम्॥
तिर्यगूर्ध्वगता रेखाः कुर्यादेकोनविंशतिः।खण्डे तु त्रिफला कोणे शलपञ्चक कोष्ठके॥
एकादश पटा वल्ली भद्रन्तु नवभिः पदैः।चतुस्त्रिंशत्तु दावापि --- विंशकैः पदैः॥
चतुर्विंशत्तु दावापि मध्ये षोडशभिः पदैः।---------- पदमष्टादशं[8] स्मृतम्॥
सितशर्कर +पाल्यो नीलेन परिपूरितम्।भद्रारुणसिता पापा परिधिः पीतवर्णकाः॥
बाह्येतरदलैः श्वेतः [रक्त]कापीतवर्णकः।खण्डे तु रं -- वालु वापीभद्रन्तु पञ्चमम्॥
परीध्यावेष्टितं पद्मं बाह्यं सत्वरजस्तमम्।मध्ये ब्रह्माष्टासु दिक्षु होमाद्यान् देवतान् हृताः॥
वायुस्सोमः तयोर्मध्ये वस[वोन्ते] तु कारयेत्।सोम ईशानयोर्मध्ये रुद्रानैकादशेव तु॥
ईशान-इन्द्रयोर्मध्ये आदित्यं द्वादशैव तु।इन्द्राग्नी --- तथा ---- अश्विनौ पूजयेत्ततः॥
आग्नेययमयोर्मध्ये विश्वेदेवान् सपैतृकान्।याम्यनैर्ऋतयोर्मध्ये[9] सप्त यक्षाश्च कारयेत्॥
नैर्ऋत्यानिलयोर्मध्ये गन्धर्वाप्सरसः कुरु।सब्रह्म [देव]योर्मध्ये सर्पाकदूंश्च कारयेत्॥
स्कन्दं नन्दीश्वर(स)शूलं महादेवं च कारयेत्।ब्रह्म [ह्मादिदेवयोर्] मध्ये मरुतस्सप्त वै कुरु॥
ब्रह्मेशाद्यादयोर्मध्ये ऋक्षादीन् गणसप्तकान्।ब्रह्मेन्द्रयोस्तथा मध्ये दुर्गां विष्णुं च कारयेत्॥
ब्रह्माग्निमध्ये च तथा स्वधादेवीं च कारयेत्।ब्रह्मणः पादमूले तु नन्दिनीं तत्र कारयेत्॥
कावेरीं नन्दिनीं चैव यमुनां च सरस्वतीम्।गङ्गां कृष्णां तथा गोदां पूज्यास्सप्त च सागरान्॥
क्षारनीर - दधिक्षीर - मधुदध्नात्यसम्भव।आवाह्य कलशेष्वेते पूज्या गन्धादिभिः क्रमात्॥
ब्रह्मजज्ञानमित्याद्यैः[10] मन्त्रैस्तांस्तास्तु देवताः।आवाह्य गन्धपुष्पाद्यैः पूज्यास्तस्तदिगीश्वराः॥
लिखित्वा सर्वतोभद्रमेवमावाह्य देवताः।तन्मध्ये तण्डुलान् शुभ्रान् क्षीपेत्प्रस्थचतुष्टयम्॥
तत्र न्यसेद्भद्रपीठे सर्वालङ्कारशोभितम्।हस्तशुद्धिं पादशुद्धिं कृत्वाचार्येण वै वयम्॥
यथाशक्ति जपेत्त्वाथ तारकं भक्तिभावतः।यथाशक्ति नियम्यास्ताः कार्यास्ता[11] कल्पमानवान्॥
तरा रामायण गह(?) तं यद्रामपट्टाभिषेचनम्।करिष्ये ब्राह्मणान् तत्र प्रीत्या रघूत्तम॥
शान्तिहोमं ततः कृत्वा पठित्वा [मन्त्रसंयुतम्]।पट्टाभिषेकसर्गं च शृणुयाद् वै समाहितः॥
रामरत्नमये पीठे नित्यं तं नियमान्वितः।नित्यपूजाविधानेन पीठस्थं दैवतं यजेत्॥

4. पुठजा[दि]द्रव्यादिकं[1] 5. (सु?)क्षीराणां बीमषाणं(?) 6. प्रज्वाले[लये]त्तत्र 7. चतुर्दिक्षु [क्ष्व]तिशोभितान् 8. पदमष्टादं (दशं?) स्मृतम्॥ 9. [आ]ज्यनैर्ऋतयोर्मध्ये 10. ब्रह्मजि(वि?)ज्ञानमित्याद्यैः 11. किर्यस्ता

तत्र चक्रं च शङ्खं च प्रत्येकं पूजयेत्सुधीः। धूपदीपादिनैवेद्यैः गन्धमाल्यादिभिस्तथा॥
मुद्राः प्रदर्शयेत्तेषु शङ्खधन्वादिगारुडाः। वेदमन्त्रैश्च सम्मन्त्र्य मूलमन्त्रेण मन्त्रविद्॥
तत्तीर्थं पावनं ज्ञात्वा प्रोक्षयेत् सर्ववस्तुषु। मधुवातेत्यादिमन्त्रैरपामार्गादिकं यजेत्॥
रामं रत्नमये पीठे इति श्लोकेन राघवम्। सिंहासने न्यसेत् वेदमन्त्रैर्वादित्रनिस्वनैः॥
मध्ये मध्ये जपेदुच्चैर्वाचयेद् वन्दिभिर्वरैः। मङ्गलं च प्रयुञ्जीयात् निष्ककर्णिभिरीरितम्॥
महान्तमुत्सवं कुर्यात् श्रीराममभिषेचयेत्। आवाहनादि षण्मुद्रां आर्त्यां सन्दर्शयेत्तथा॥
सालग्रामे स्थावरे वा आवाहनविसर्जने। पाद्यार्घ्यानुपचारादीन् मधुपर्कं च शास्त्रतः॥
उदकान्नं च वस्त्रं च धूपञ्चैवावान्तरान्तरा। गन्धतैलेन चाभ्यज्य मर्दनोद्वर्तनादिकम्॥
कृत्वाभिषेचयेद्रामं चतुर्दिक्षु स्थितैर्द्विजैः। आदौ पञ्चामृतस्नानं ततः शुद्धोदकेन च॥
आसन्दिस्थेन दध्नादौ मधुनाज्येन वै पृथक्। स्नापयेत् सप्तकुम्भैश्च[12] तत्तन्मन्त्रेण सामभिः॥
पयःशर्क्करमिश्राभ्यां[13] मध्वाज्यैरभिषेचयेत्। स्नानं पुरुषसूक्तेन शुद्धं वोदकेन च॥
नालिकेरोदकेनापि तथा तालफलाम्बुना। गजद्रव्यञ्च बहुभिस्तथा गन्धोदकेन च॥
ऐक्षवेनोदकेनापि कर्पूरादिसुगन्धिना। कदलीपनसा[दी]नामाञ्जनोऽपि[13] सुगन्धिना॥
नानाघटश्चोदकेन सर्वतीर्थाम्बुना तथा। कस्तूरी गन्धचूर्णेन सुवर्णशकलैस्तथा॥
रत्नैश्च बहुभिस्तद्वर्जितुं नै(मै)र्गन्धसंयुतैः। ततस्सप्ताब्धितीर्थेन सर्वतीर्थोदकेन च॥
शङ्खान् सम्पूज्य तत्रैव संपूर्णैश्च रघूत्तमम्। स्थापयेद्धूपयेन्मन्त्री भूकुम्भं सह शास्त्रतः॥
शतं सहस्रमयुतं शक्त्या वाप्यभिषेचने। ततश्शुद्धजलेनैव स्नापयेच्चमतन्द्रितः॥
सीतासमेतं श्रीरामं तन्मन्त्रैरभिषेचयेत्। स++++++++++ कर्मणा सामिषा॥
आदौ पुरुषसूक्तेन सूक्ताभ्यां च श्रिया भुवः। आपोहिष्टैत्यादिमन्त्रैः विष्णोर्नुकमिति कमात्॥
सूक्तत्रयेण चाभ्यर्च्य सम्पायीत्येकसूक्ततः। परो मात्रेत्यादि सूक्ताभ्यामभिषेचयेत्॥
अस्यामवस्येति वर्गैर्दशभिः क्रमशस्ततः। पवमानं कोयमात्मेत्यादि ऋग्भिः क्रमात्सुधीः॥
अग्न इत्यादिकं शान्तिं पठंस्तमभिषेचयेत्। हिरण्यशृङ्गानन्वाकैः पवमानाख्य तस्य ते॥
सर्वेषु वेत्यादिनानुवाकेनाभिषिञ्चयेत्। क्वेदमस्त्रं निर्विशङ्केत्यादिमन्त्रैरनेकधा॥
कश्चिद्भवेत्यादिमन्त्रैस्तथार्चा च नवतेस्तथा। यत्ते चितानुवाकेन तपसा देवमन्त्रतः॥
पवित्रवन्त इत्याद्यैरिमानुकमितीश्वरम्। य इमा विश्वानुवाकेन हस्तभ्रीय्यमन्त्रतः॥
सुवर्णं धर्मानुवाकेन भत्रासन् ब्रह्मेति मन्त्रतः। हर्धा वाचास्यानुवाकेन त्वमग्नेद्युभिरित्यपि॥
विष्णोः क्रमोऽसीति मन्त्रैस्ता सूर्येत्यनुवाकतः। इमानुकमिति श्रुत्या विष्णोः क्रमोऽसीति मन्त्रैः॥[15]
++++++++ ववतोसि मनस्ततः। सहस्रशीरुषं देवं नासदासी ततः परम्॥
अतो देवीत्यादि मन्त्रैः युञ्जते मन इत्यपि। ततः कस्मिन्निर्मिति' ब्रह्मविदेतिमन्त्रतः॥

12. सद्विप्कुस्ततेश्चस 13.ततः श्रहमि स्नाभ्यां 14.कदली पनसां ---माञ्जनोऽपि 15. अतः परं मातृकायां [सूर्येत्यनुवाकतः।इमानुकमिति श्रुत्या] इत्यधिकः।

ब्रह्मत्रयं तराभ्यां [च] यज्ञायज्ञासमन्त्रतः।[ज]प्येद्वैराजसामाभ्यां वामदेवस्य सामतः॥
वैरूपेण तथा साम्ना वारवन्ती च सामतः।आपो राजानमिति चतुर्वै गायेति सामतः॥
विप्रक्षं स्याविष्कसाम्ना च नैव तेन तथैव च।शाक्वरेण तथा साम्ना पवमानस्सरस्वती॥
प्रकाप्यमसुनेत्यादि सामभिर्बहुभिस्तथा।अथर्वणे चन्द्रमाद्याविष्कं प्रथम इत्यपि॥
नैवाधिपतिरित्याद्यैः कमेण मुनिभिः त्रिभिः।पवित्रं धेनुरिति च विष्णुरग्रे भवत्तथा॥
विश्वं विष्णुरिति श्रुत्या तापन्नोत्तर संश्रया।नारायणोपनिषदा लक्ष्मीभक्तेन चान्ततः॥
तथा त ऐन्द्रो महाभिषेक इत्यादिभिः क्रमात्।खण्डिकाभिश्च स्त्रि(स्त्री?)भिस्नापयेद्रव्यसत्तमम्॥
सुरास्त्वामिति च श्लोकैः तथा चाखिलशान्तिभिः।दत्वा चाचमनीयञ्च वाससं परिधापयेत्॥
पुनराचमनीयञ्च सोत्तर्योपवीतकम्।पीठमानीय संस्थाप्य पादुका मुद्रया हरिम्॥
भूषणैर्भूषयेद्योग्यैः तुलसीदलमिश्रितैः।मूलेन चार्चयेद्गन्धयज्ञकर्दमसंज्ञिकम्॥
कस्तूरिकाया द्वौ भागौ द्वौ भागौ कुङ्कुमस्य च।चन्दनस्य त्रयो भागो शशिनस्यैक एव हि॥
यज्ञकर्दम इत्युक्तं श्रीरामस्यादि सम्मतः।पुष्पाञ्जलाक्षतान्दत्वा सकृन्नीराजयेत्प्रभुम्॥
वामभागे [सुखा] सीनां सीतां काञ्चनसन्निभाम्।लक्ष्मणं दक्षिणे भागे तन्मन्त्रणार्चयेत्प्रभूम्॥
वामपार्श्वे त्रिकोणस्य शार्ङ्गं दक्षिणदेशतः।तत्तन्मन्त्रैरर्चयेत्तान् बहिरङ्गान् [प्र]पूजयेत्॥
ततस्सिंहासने तस्मिन् श्रीत्युक्तं यत्र नायकम्।लिखित्वा पूजयेन्मन्त्रान् दशावरणसंयुतम्॥
[यन्त्रं] मन्त्रमयं प्राहुः मन्त्रात्मा देवतेति च। देहात्मनो यथा देहो मन्त्रदेवतयोस्तथा॥
तस्मात्पठेयुर्मन्त्राज्ञाः लिखित्वा तु प्रपूजयेत्। सौवर्णे राजते ताम्रे भूर्जपत्रे तथा भुवि॥
विना यन्त्रे य -- जा देवतानपि वी---- ।षट्कोणं प्रथमा वृत्तिः स्यादगै --- क्रमात्॥
द्वितीयामार्दकैर्द्रव्यैः रष्टाब्जजलमूलके।तृतीया वासुदेवान्यैरष्टपात्रैरथ क्रमात्॥
चतुर्थी वासुदेवाद्यैः पात्रान्ते पूर्वतः क्रमात्।सृष्ट्याद्यैः पञ्चमावृत्तिः द्वितीयाष्टदलैस्तथा॥
षष्ठी द्वादशपात्रेषु वशिष्टाद्यैर्महर्षिभिः।सप्तमी षोडशाद्य (?) नीलाद्यैः कपिकुञ्जरैः॥
युगाद्यैरष्टमी ज्ञेया द्वात्रिंशद्दलपत्रके।इन्द्राद्यैः भग्रहे भाण्डे न पमाचरणं भवेत्॥
दशाचरणपूजेयुः यः कर्तव्या साधकोत्तमैः।पार्षदैः--- नम इति भूग्रहेरर्चयेत्॥
ततो बहिर्नवग्रहेभ्यो काश्यपेभ्यो नमो यजेत्।ततः सहस्रनामाद्यैः पूजां कृत्वातिभक्तितः॥
ततः समर्पयेद्धूपं दीपं वादित्रनिस्वनैः।भक्ष्यभोज्यादिसहितं नैवेद्यं विनिवेदयेत्॥
तन्मध्ये तु जपेन्मन्त्रं यथाशक्तिस्ततः परम्।स्वगृह्योक्तविधानेन कृत्वाग्निं मुखत ततः॥
सहस्रं मूलमन्त्रेण हुत्वा [आ]ज्यप्लुप्तो हविः।द्वारपीठाङ्गदेवेभ्यो ह्येकैकामाहुतिं हुनेत्॥
गणेशाद्या द्वाविंशत् भवन्ति द्वारदेवताः।अष्टाचत्वारिंशात्पीठा देवतामण्डुकादयः॥
अष्टादशशतं देवाः भवन्ति हृदयादचः।गणेशाय च सपित्रे --हेशाय हृदये तथा॥
चतुर्णामाहुतीर्हुत्वा दान्तो ब्रह्मार्पणाहुतिः।भूर्भुवस्सुवस्स्वाहा इदं ब्रह्मणे न मम॥

1. द्वितीयामादिकैर्दवैः (मार्दकैर्द्रव्यैः?)

मूलमुच्चार्य, "साङ्गाय सायुधाय स्वाहा।नयसाविरणाय सशक्तिकाय श्रीसीतापतये स्वाहा। श्रीरामाय इदं न मम" इति पूर्णाहुतिं हुत्वा, परिधिसमूहनं त्र्यायुषमिति मन्त्रेण रक्षां धारयेत्॥

पूर्णपात्रं पूर्णतोयं सपूर्यकृत्वाभिमन्त्रितैः।स्वात्मानमभिषिञ्चितैस्सदूर्वैस्तुलसीदलैः ॥
विकीर्य पुष्पाजलि[म]ध्ववाहं कुर्यात् प्रमाणं हुतभुक् मुखाय।
उद्वास्य वह्निं त्रिदशाधिपेशम् बलिं हरेत् भैरवयोगिरीड्यम्॥
एवं जपं दशांशेन हुनेदाज्यं पूतं हविः।तद्दशांशेन मूलेन गन्धपुष्पाक्षतोदकैः॥
साङ्गं राममितीत्येवं कृत्वा तर्पणमाचरेत्।तद्दशांशेन तत्तोयैः सप्तकृत्वाभिमन्त्रितैः॥
आत्मानमभिषिञ्चतैस्सपूर्वैः तुलसीदलैः।पाठार्थं राममुद्वास्य मुक्तौ संयोज्य पूर्ववत्॥
ब्रह्माय विष्वक्सेनाय वज्रतुण्डाय भान्वे।शक्त्यवच्छिष्टचण्डाद्यैर्दवचण्डिचराय च॥
बलिं समर्पयेन्मन्त्री ह्यन्यथा निष्फलं भवेत्।उत्तरापोशनं दद्यात्पश्चाद्रामयशस्स्मृतः॥
गण्डूषिकं जलं दद्यात् अन्यदाचमनं ततः।हस्तवासं सकर्पूरं मकुटं भूषणानि च॥
कुण्डलादीनि शङ्खादि दशमुद्राः प्रदर्शयेत्।ताम्बूलमर्पयेत्पश्चात् दर्पणं च्छत्रचामरे॥
[पूर्वेणैव]चाचार्यो दद्यान्नीराजनं परम्।पुष्पाञ्जलिं ततो दद्यात् ब्राह्मणैस्सह शास्त्रतः॥
प्रदक्षिणनमस्कारं च कृत्वा स्तोत्रं ततः परम्।नृत्तगीतं च वाद्यं च वाहनं च समर्पयेत्॥
सर्वोपचारान् कृत्वेत्थं प्रार्थयित्वा यथाविधि।पूजां समर्प्य रामाय यस्य स्मृत्येत्यादिशास्त्रतः॥
पट्टाभिषेकसर्गस्य शेषं श्रुत्वा च भक्तितः।रामायणं वाचयित्वा स्वस्यवित्तानुसारतः॥
वक्तारं चाथ संपूज्य गुरुन् विप्रांश्च पूजयेत्।ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दत्वा ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः॥
अथ पुष्पाञ्जलिं दत्वा संपूज्य ब्राह्मणान् तथा।भक्त्या संशोधितं स्वान्तं विशन् विश्रामहेतवे॥
प्रार्थयन् पादुके दत्वा साङ्गमुद्वासयेद्धरिम्।असकृद्वा सकृद्वापि कुर्यादेवं विचक्षणः॥
ऐहिकानखिलान् भोगान् भुक्त्वान्ते मुक्तिमाप्नुयात्।पट्टाभिषेकसर्गान्ते फलान्युक्तानि यानि वै॥
तानि सर्वाणि सिध्यन्ति क्षिप्रं रामाभिषेचयान्।निष्कामो --- म-- व साक्षात्कारौ भवेदिह॥
अर्थसिद्धिः सकामानः सर्वं तन्निष्फलं भवेत्।तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रुत्वा रामायणं बुधः॥
निष्कामतोऽतिभक्त्यैव पूजयेद्रघुनायकम्।

इति श्रीरामपट्टाभिषेकविधिः समाप्तः

The scribe adds

रामायणस्य श्रवणं वन अभिषेचनम्।जपहोमस्तर्पणं च प्रणामेन च शस्यते।
तरत्येषां द्विजवरः श्रवणं विप्रभोजनम्।पूजोत्सवं चातिभक्त्या दक्षिणा च विधीयते॥

***

रामायण की रचना के साथ जुड़े

रामकथा के पूर्व-संकेत

डा. वसन्तकुमार म. भट्ट *

रामकथा की ऐतिहासिकता पर अनेक विदेशी विद्वानों ने प्रश्नचिह्न उठाकर हमारी भारतीय परम्परा को अर्वाचीन सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। इनमें सबसे मुखर बेबर के मतों का खण्डन करते हुए विद्वान् लेखक ने यहाँ सिद्ध किया है कि वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड की घटना पूर्णत: ऐतिहासिक है तथा उसके बाद की घटनाओं का लेखन वाल्मीकि ने वैदिक परम्परा से प्राप्त कथानकों का उपयोग कर लिखा हो। किन्तु राम की ऐतिहासिकता पर कोई प्रश्नचिह्न नहीं उठाया जा सकता है।

भूमिका

महर्षि वाल्मीकि ने रामायण की रचना की थी। किन्तु विद्वद्-गोष्ठी में ऐसे विचार-विमर्श होते रहे हैं कि-

वाल्मीकि की रामकथा को क्या किसी ऐतिहासिक घटना का आधार रहा होगा?

1. यह आदिकाव्य क्या महर्षि वाल्मीकि की केवल एक मात्र कल्पना ही है?,
2. नारद एवं ब्रह्माजी के आशीर्वाद से पूर्व में मिले रामचरित के रेखाचित्र पर आधारित वाल्मीकि का यह "क्रान्तदर्शन" माना जाय, अर्थात् क्या इस काव्य को आदिकवि का "अपरोक्षानुभूति" रूप कोई प्रातिभ दर्शन माना जाय?,
3. वाल्मीकि के जन्म से भी पहले लोक साहित्य के रूप में प्रचलित कुछ भिन्न भिन्न कथानकों का समूह, जैसे कि- (क) राम का निर्वासन, (ख) रावण और सुवर्णमयी लंका, (ग) बाली और सुग्रीव, हनुमानादि वानर विषयक कथाएँ (विदेशी विद्वानों ने जिनको "आख्यान चक्र" नाम दिया है)- उन सब को एकत्र करके, वाल्मीकि ने अपनी कविप्रतिभा से व्यवस्थित क्रम में सुनियोजित करके, उनमें से काव्य का निर्माण किया होगा?,
4. बौद्ध त्रिपिटक (ईसा पूर्व पाँचवी शती) में मिल रही जातक कथाओं में से दशरथ-जातक, अनामक जातकादि की कथा-सामग्री का उपयोग करके वाल्मीकि ने रामायण की रचना की होगी?,
5. वाल्मीकि ने क्या ग्रीक महाकवि होमर के इलियड एवं ओडिसी नामक दो एपिक में प्राप्त हो रही स्त्री के अपहरण की कथा, उसके निमित्त से हुआ युद्ध, धनुर्भंग की कथा- उन सब की नकल करते हुए वाल्मीकि ने राम के जीवन में भी ऐसे प्रसंगों की कल्पना की होगी?,
6. अथवा, वाल्मीकि ने, उनके नजदीक के भूतकाल में जो विशाल वैदिक मन्त्र-साहित्य था और उसमें भी जो इन्द्र-वृत्रासुर संग्राम की पुराकथाओं (मिथकों) में वर्णित युद्ध को ही, राम-रावण के युद्ध के रूप में रूपान्तरित की होगी?

* पूर्व-निदेशक, भाषा-साहित्य भवन, गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद– 380009, संपर्क सूत्र:- E-mail: v.k.bhatt53@gmail.com

इन तर्क-वितर्कों पर विचार करना ज्ञानवर्धक होगा और रसप्रद भी होगा।

(1)

महाभारत के आरण्यक पर्व (3-147, 28-38) में एक रामाख्यान दिया गया है। तथा भीष्मपर्व, कर्णपर्व, शल्यपर्व (और जो शायद परवर्तीकाल का प्रतीत होता है, वैसे) द्रोणपर्व में भी कुत्रचित् रामकथा, राम-रावण के युद्ध के एकाधिक सन्दर्भ मिल जाते हैं। इन सभी का वाल्मीकीय रामायण के साथ तुलनात्मक अध्ययन करने से विद्वानों ने दो तरह के मत उच्चरित किये है:-

1. वाल्मीकि के रामायण का ही महाभारत के "रामोपाख्यान" में स्वतन्त्र रूप से संक्षेपीकरण किया गया है। अथवा,
2. वाल्मीकि से भी पूर्व में विद्यमान किसी लोक-साहित्य में प्रचलित रामकथा के आधार पर, महाभारत के रामोपाख्यान की रचना की गई होगी।

किन्तु, महाभारत के समीक्षित पाठ को सम्पादित करनेवाले प्रॉफे. वी. एस. सुकथंकर जी ने, कुल 86 सन्दर्भों को उद्धृत करके, यह दिखाया है कि महाभारत के रामोपाख्यान का वाल्मीकि के रामायण के साथ सीधा शाब्दिक साम्य है। एवमेव, महाभारत में वाल्मीकि का भी साक्षात् नाम-निर्देश मिलता है। अतः महाभारत का रामोपाख्यान वाल्मीकि के रामायण को ही आधार बना कर, लिखा गया है। जर्मन विद्वान् हरमान याकोबी भी प्रॉफे. सुकथंकर जी जैसा ही मत प्रकट करते है ॥

दूसरी ओर, जैन-साहित्य में, प्राकृतभाषा में लिखी गई जो रामकथाएँ मिलती हैं, वे भी वाल्मीकि के रामायण का ही अवलम्बन लेकर बनाई गई हैं। अतः, रामायण की आधार-सामग्री का विचार करने के लिए जैनियों की रामकथाएँ भी उपयोग में नहीं ली जा सकती है।

यहाँ पर, यह भी सोचना आवश्यक है कि वैदिक मन्त्र-साहित्य में निर्दिष्ट राम, दशरथादि से जुड़े प्रसंगों का वाल्मीकि के रामायण में कहाँ-कहाँ पर प्रतिबिम्ब अंकित हुआ है?, यानी रामायण की रचना में, वेदों में मिल रहे रामादि पात्रों की क्या उपयोगिता है? तो वेद-साहित्य में इक्ष्वाकु, दशरथ, अनेक राम, अश्वपति कैकेय एवं जनक– इतने नामों का प्रकट निर्देश मिलते हैं। किन्तु उनके साथ सम्बद्ध हो- ऐसा एक भी कथानक वहाँ पर नहीं है। एवमेव, इन नामों से उल्लिखित किये गये पात्र भी परस्पर में किसी तरह से जुड़े हों, ऐसा भी नहीं लगता है। जैसे कि, इक्ष्वाकु (ऋग्वेद 10-60 -4) एक राजा है एवं दशरथ (ऋ. 1-126-4) भी एक राजा का नाम है। वहाँ पर ऐसा नहीं बताया है कि दशरथ इक्ष्वाकु वंश में पैदा हुए थे। उसी तरह से, तैत्तिरीय आरण्यक 5-8-13, ऋग्वेद 10-93-14, ऐतरेय ब्राह्मण *7-27* से 34, शतपथ ब्राह्मण 4-6-1-7, जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण 3-7-3-2, 4-9 1-1 में (अलग अलग) राम के निर्देश मिलते हैं। तथा जनक का नामोल्लेख कृष्ण यजुर्वेद, तैत्तिरीय ब्राह्मण 3 10-9, शत. ब्रा. 11-3-1-2 से 4, जै. ब्रा. 2-76-77, बृहदा. उप. 3-1-1 से 2, कौषी. उप. 4-1 इत्यादि में मिलता है। किन्तु इन में कहीं पर भी जनक सीता के पिता है, अथवा जनक के जामाता राम है- ऐसा कोई प्रकट-अप्रकट निर्देश नहीं है। अश्वपति कैकेय (शत. ब्रा. 10-6-1-2) का निर्देश भी यही बताता है कि वे वैश्वानर अग्नितत्त्व को जानने वाला व्यक्ति है।

"सीता" का निर्देश भी **अर्वाची सुभगे भव ससीते वन्दामहे त्वा.** (ऋग्वेदः 4-57-6), इन्द्रः *सीतां निगृह्णातु तां* पूषन् यच्छतु. (ऋग्वेदः 4-57-7) से शुरू करके गृह्यसूत्र पर्यन्त मिलते हैं । किन्तु उन सब में कृषि की अधिष्ठात्री देवी,

जोती हुई जमीन, या कृषिक्षेत्र में हल से बनाई गई लकीर – ऐसा अर्थ ही निकलता है। एवमेव सीता को इन्द्र की पत्नी, या पर्जन्य की पत्नी ही (इन्द्रपत्नीम् उपह्वये *सीतां सा* मे त्वनपायिनी भूयात् -पारस्कर गृह्यसूत्र) बताई गई है। इन इक्ष्वाकु, दशरथ, राम, कैकेय, जनक एवं सीता के सभी सन्दर्भों से वाल्मीकि के रामायण की रामकथा की किसी भी तरह से सामग्री मिलने की गुंजाईश दिखती नहीं है। वेद-साहित्य में मिल रहे ये सारे नाम-निर्देश अवश्य रामायण की कथा में आनेवाले मुख्य पात्र हैं, लेकिन वेद-साहित्य में उन पात्रों के साथ जुड़ी कोई कहानी नहीं है, जो वाल्मीकि के काम आयी हो। सारांशतः- महाभारत का रामोपाख्यान, जैनियों की रामकथाएँ, या वैदिक साहित्य में मिल रहे नाम-निर्देश को हम वाल्मीकि की आधार-सामग्री के रूप में घोषित नहीं कर सकते हैं।

(2)

यूरोपीय विद्वान् वेबर ने ऐसा बोल दिया है कि वाल्मीकि के रामायण में बौद्ध-जातक कथाएँ एवं होमर के इलियड तथा ओडिसी नामक ग्रीक महाकाव्यों में आयी हुई स्त्री-अपहरण की कथा, तन्निमित्त हुए ट्रॉय के युद्ध की घटना को आधार-सामग्री बनाई गई है। बौद्ध जातक-कथा में दशरथ-जातकम् की कथा का स्वरूप इस तरह का है:- वाराणसी नगर में एक दशरथ नाम का राजा राज्य करता था । उसको राम, लक्ष्मण एवं सीता नामकी तीन सन्तन थी। दशरथ को दूसरी पत्नी से भरत नाम का तीसरा पुत्र भी हुआ था । भरत जब बड़ा हो गया तो दूसरी रानी ने राज्य का अधिकार मांगा। लेकिन दशरथ ने उस मांग को ठुकराई। किन्तु, अब यह दूसरी रानी राज्य के लिए कोई कपट करेगी- ऐसी आशंका से दशरथ ने ही अपनी तीनों सन्तनों को (राम, लक्ष्मण एवं सीता को) वन में बारह वर्षों के लिए चले जाने की सलाह दे दी। राम के वनवास के नवम वर्ष में दशरथ की मृत्यु हो गई, तब भरत ने राजगादी का स्वीकार नहीं किया। वह जहाँ राम रहते थे वहाँ हिमालय में पहुँचा, राम को वापस ले आने के लिए। सब से पहले तो भरत ने पिता जी के अवसान का वृत्तान्त कहा। लेकिन उसको सुन कर राम पण्डित रोते नहीं है और तनिक क्षुब्ध भी नहीं होते हैं। राम ने सोचा कि मेरे भाई-बहन लक्ष्मण एवं सीता यदि पिता के अवसान की बात सुनेंगे तो वे दुःखी होंगे। इस लिए राम ने उन दोनों को सब से पहले तो जलाशय में खडे रहने को कहा । वहाँ पर, दशरथ जातक में एक ऐसी गाथा मिलती है:

एष लक्खण सीता च उभो ओतरथोदकं ।
एवायं भरतो आह राजा दशरथो मतो॥

अर्थात्- 'अब लक्ष्मण और सीता दोनों जल में जो कर खडे रहें, तब राम ने कहा- यह भरत बता रहा है कि राजा दशरथ की मृत्यु हो गई है।' तब वे दोनों पितृमरण के शोक से मूर्च्छित हो कर, जल में गिर पड़ते हैं। उन दोनों को जल में से बाहर निकाले जाते हैं। इस मौके पर, राम पण्डित ने जीवन की अनित्यता का उपदेश दिया। पण्डित राम ने बताया कि- बहुत विलाप करने पर भी, जिसकी हम रक्षा नहीं कर सकते हैं, उसके लिए बुद्धिमान् लोग शोक नहीं करते हैं। इत्यादि । इस कथानक के अन्त में, घटस्फोट किया जाता है कि- पितृमरण के समाचार से जो क्षुब्ध नहीं हुए, वे राम पण्डित दूसरे कोई नहीं थे, वे तो भगवान् बोधिसत्त्व (स्वयं बुद्ध) ही थे!

इसी तरह से, "अनामक" जातक-कथा में राम, लक्ष्मण एवं सीता जैसे नाम-निर्देश नहीं है। किन्तु उसमें वर्णित घटनाओं का साम्य वाल्मीकि के रामायण की घटनाओं के साथ देखा जा सकता है। जातक कथाओं में बुद्ध के पूर्वावतारों की कहानियाँ हैं, जिनमें बुद्ध को बोधिसत्त्व कहे गये हैं। किसी जन्म में बोधिसत्त्व राजा बने थे। तब उनके मातुल ने ही उन पर आक्रमण कर दिया। बोधिसत्त्व युद्ध में होनेवाली हिंसा को रोकने के लिए वन में चले गये । वहाँ पर, नागजाति का एक

राजा बोधिसत्त्व की पत्नी का अपहरण करके ले जाता है। तत्पश्चात् बोधिसत्त्व ने वानरों की सहायता से अपनी पत्नी को कहाँ छुपाई है? वह जानकारी हासिल कर ली। वानरों ने पत्थरों से समुद्र पर सेतु का निर्माण किया, वहाँ जा कर युद्ध किया और बोधिसत्त्व की पत्नी को पुनः वापस प्राप्त करवाई। तब उस पत्नी ने पृथिवी को फाड़कर अपना सतीत्व प्रमाणित किया!

प्रॉफे. वेबर को लगता है कि सुत्तपिटक के पंचम खुद्दकनिकाय में आयी हुई इन दशरथ जातकादि की कथाओं में रामायण के पूर्वार्ध में आयी हुई कथा की आधार-सामग्री संनिहित है। यद्यपि रामकथा के गम्भीर अध्येता फादर कामिल बुल्के (रामकथा, उत्पत्ति और विकास, प्रकाशक- हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग विश्वविद्यालय, 1962) ने वेबर के विचारों का परिहार करते हुए बताया है कि त्रिपिटकों में मिल रही इन जातक कथाओं की गाथाएँ ईसा पूर्व तीसरी शती हैं और उन गाथाओं को विशद करने के लिए बीच बीच में जो गद्यांश जोडे गये हैं उनका समय तो ई.स. 500 है। तथा इन गद्य टीकाओं की सहायता के बिना त्रिपिटकों की गाथाओं को समझना सम्भव ही नहीं है। क्योंकि गाथाओं के कथन में तो कथांश बहुत अल्प मात्रा में ही दिया गया है। एवमेव, दशरथ-जातक की कथा तो ईसा की पाँचवी शती में लिखी गई एक सिंहली-भाषा में लिखे गये पुस्तक का पालि में किया गया अनुवाद है। अतः फादर कामिल बुल्के इन जातक कथाओं को रामायण की आधार-सामग्री के रूप में स्वीकार ने को कथमपि तैयार नहीं है।

(3)

प्रॉफे. वेबर ने जो कहा था कि ग्रीक महाकाव्य इलियड एवं ओडिसी में से स्त्री के अपहरण की कथा, धनुर्भङ्ग और राम-रावण के युद्ध की कथा की प्रेरणा प्राप्त की होगी - यह मत बहुत विवादास्पद बना है। फादर कामिल बुल्के कहते हैं कि प्रॉफे. वेबर के मत का अनुसरण करनेवाला यदि कोई है तो वह अकेले वेबर ही हैं! दूसरी ओर, ई.स. 1873 में, मुंबई से श्री के. टी. तेलंग ने "रामायण कॉपिड फ्रोम होमर?" नामक ग्रन्थ लिख कर, वेबर के मत का दृढतापूर्वक खण्डन कर दिया है। यह भी प्रमाणित हो चुका है कि होमर का समय ई.स. 800 है और हमारे रामायण का रचना-काल ईसा पूर्व पाँचवीं शती है। अतः हम क्यूँ ऐसा न कहे कि- होमर ने वाल्मीकि के रामायण में से प्रेरणा ली होगी!

श्री के. टी. तेलंग (1873) के बाद, Hermann Jacobi (हरमान याकोबी) ने भी, ई.स. 1893 में, Das Ramayana नामक ग्रन्थ में प्रॉफे. वेबर के मत का खण्डन ही किया है। होमर के काव्य में कथा ऐसी है कि ट्रॉय का राजकुमार स्पार्टा के राजा की रानी हेलन को प्रेम में वशीभूत करके, उसको उठा कर ले जाता है। तत्पश्चात् ट्रॉय के राजा ने बडे बडे समुद्री जहाँजों में सैन्य को बिठा कर, समुद्री सफर करके, ट्रॉय नगर पर आक्रमण कर वर्ष पर्यन्त चला था। अब. राम-रावण के यद्ध-प्रसंग की प्रेरणा यदि वाल्मीकि ने होमर के काव्य में से ग्रहण की होती तो, प्रॉफे. याकोबी का कहना है कि, वाल्मीकि को भी ऐसा लिखना था कि राम ने भी वानरों की सेना को समुद्री जहाजों में भरकर, लंका पर आक्रमण किया था। हनुमान नाम का वानर आकाश में उड़कर, समुद्रोल्लंघन करता है, लंकादहन करता है, उसके बाद पत्थरों से सेतुबंध बांधा जाता है इत्यादि कल्पना प्रचुर प्रसंगों को लिखने की क्या आवश्यकता थी? यदि होमर का ही अनुकरण करना था तो वाल्मीकि को कल्पना विलास दिखाने की क्या जरूरत थी? ऐसा अर्थपूर्ण प्रश्न उठा कर, प्रॉफे. हरमान याकोबी ने वेबर के मत का मार्मिक खण्डन किया है। याकोबी के मत को उनके शब्दों में देखने कि जिज्ञासा हो तो सुनिए:

If there would have been a definite knowledge of sea-voyage, the adventurous task of building the bridge would not have been restored to. The jump of Hanumat and Sagara's help to Rama under compulsion would not have been imagined..... Now, to come

to Weber's conjecture, had Valmiki got the inspiration of composing the Ramayana from a very superficial knowledge of the Homeric legends, then the transportation by ship, which is never absent in the Odysse and the Iliad, would have certainly played a part in the Ramayana and the poet would not devised the above mentioned phantastic way of rendering assistance. (See : *Das Ramayana* by Hermann Jacobi, Translated into English by S. N. Ghosal, published by the Oriental Institute, Vadodara, 1960 (p.74).

प्रॉफे. हरमान याकोबी ने कहा है कि रामायण की रचना के लिए वाल्मीकि ने कुछ ऐतिहासिक अंश और अपनी निजी कविप्रतिभा से कल्पित प्रसंगों का संयोजन किया है ऐसा प्रतीत होता है। वर्तमान रामायण के पहले बालकाण्ड और अन्तिम उत्तरकाण्ड को परवर्ती काल के प्रक्षिप्तांश मान कर, उनको अलग कर लेते हैं। किन्तु उसके बाद, अवशिष्ट रहे पाँचों काण्ड वाल्मीकि की कलम से ही निकले हैं। उन पाँचों में भी जो सब से पहला अयोध्याकाण्ड है। उसमें निरूपित कथा हकीकत में किसी ऐतिहासिक घटना पर पूर्ण रूप से आधारित लगती है। इसमें इक्ष्वाकु वंश के राजा दशरथ के राजमहल में, राजगादी को लेकर जिस तरह की राजनीति के दावपेच खेले गये होंगे, जिसके परिणाम स्वरूप ज्येष्ठ पुत्र राम को वनवास दिया गया होगा - यह घटना निश्चितरूप से इतिहास के किसी समय-बिन्दु पर आकारित हुई होगी। राम के निर्वासन के बाद, भरत उसको वापस लेने गये होगा और बिना सफल हुए वह घर वापस लौटा आया- इतना कह कर, यदि वाल्मीकि ने कथा को समाप्त की होती तो वह एक वास्तविक इतिहासमूलक काव्य बना होता। और इस तरह के काव्य में कुछ भी अवास्तविक या काल्पनिक नहीं लगता। किन्तु वाल्मीकि ने उसके पीछे जो अरण्यकाण्ड और युद्धकाण्डादि की कथाएं जोडी हैं वे सारी कवि की कल्पना से आविष्कृत की गई हैं। क्योंकि उनमें अब अमानुषी या अतिमानुषी दुनिया को आलिखित की गई।

वाल्मीकि को गोदावरी को लाँघकर, दक्षिण भारत की भूगोल, वहाँ के आदिवासी प्रजाजनों के बारे में कुछ भी, एवमेव, दूर सुदूर समुद्र पर्यन्त के प्रदेशों का भी साक्षात् परिचय हो ऐसा दिखता नहीं है। गोदावरी के उस पार रहे दण्डकारण्य, वहाँ के निवासी ऋषि-मुनिओं के आश्रम एवं वहीं पर रहनेवाले वानर तथा राक्षसों के विषय में कवि वाल्मीकि ने केवल सुना होगा। जिनका उन्होंने कल्पनारञ्जित चित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया है। (इतना कहने के बाद, हरमन याकोबी ने जो बात कही है वह अति महत्त्वपूर्ण है:-) रामायण के इस दूसरे भाग की रचना के लिए वैदिक पुराकथाओं ने (यानी वेदकालिक मिथकों ने) वाल्मीकि को बहुत बडी सामग्री प्रदान की है।।[1]

अलबत्ता, यहाँ सब से पहले, डॉ. याकोबी कहते हैं कि- अरण्यकाण्ड से शुरू हो रहे दूसरे भाग में, सभी घटनाएँ कल्पनाजनित ही है। वे सारी घटनाएँ वैदिक पुराकथा (मिथक) पर ही सम्पूर्णतया आधारित है- ऐसा भी कहने का आशय नहीं है। जैसे कि, वालिन् एवं सुग्रीव के बीच में युद्ध के दौरान, राम ने किसी वृक्ष के पीछे छुप कर, वाली का वध किया- वह कथानक किसी वास्तविक प्रसंग पर आधारित होगा। क्योंकि, यदि दूसरे भाग में, कवि वाल्मीकि ने सब कुछ काल्पनिक ही लिखा होगा, तो उसमें वे अपने नायक को कलंक लगे ऐसे कोई प्रसंग की कल्पना नहीं करते। किन्तु राम के वास्तविक जीवन में यह एक ऐसा प्रसंग हो गया था कि जिसमें वे कलंकित हुए थे, उसको लिखना आवश्यक भी था।

1. Like the clouds he flies hundred of miles through the air over the ocean in order to find out Sita, the personify cation of agriculture and finds her out. She is brought from the distant South, from which the monsoon comes. Rama succeeds in the task with the help of the apes, i. e. clouds, which pour down showers. – Das Ramayana, p. 99.

इसके कारण ही, परवर्ती काल में इस घटना के साथ जुड़े पाठ्यांश में (द्रष्टव्यः- रामायण 4-17-18 श्लोकों में) कुछ परिवर्तन एवं परिवर्धन करके, उस कलंकदायी प्रसंग को न्यायिक सिद्ध करने की कोशिश की गई है। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि वाल्मीकि ने रामायण के दूसरे भाग में यद्यपि वैदिक मिथकों का विनियोग जरूर किया है, तथापि बीच बीच में, उन्होंने रामकथा से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य कथाचक्रों का भी उपयोग किया है। इन कथाचक्रों में भी कुत्रचित् वास्तविकता का किञ्चित् संस्पर्श भी सुरक्षित रहा देखा जा रहा है।

अब हमें यह देखना है कि, प्रॉफे. याकोबी के मत से, रामायण में यद्यपि सब कुछ वैदिक मिथक पर आधारित नहीं है, तथापि बहुत कुछ वैदिक मिथक के आधार पर ही अद्भुत रोमांचकारी नवसर्जन किया गया है वह कैसे सिद्ध होता है:- वेदमन्त्रों में इक्ष्वाकु, दशरथ, राम, जनक, अश्वपति कैकेय एवं सीता- इतने नाम मिलते हैं। उनमें से सीता के पात्र को लेकर, प्रकृत चर्चा का आरम्भ करते है:- ऋग्वेद 4-57-6 एवं 7 में, तथा पारस्कर गृह्यसूत्र में एक जोती हुई जमीन, जिसमें कृषिकार के द्वारा किसी क्षेत्र में खिंची लकीर को "सीता" कही है। एवमेव ऐसी सीता को इन्द्र की एवं पर्जन्य की पत्नी कही है। उसी वैदिक 'सीता' को वाल्मीकि ने राम की पत्नी के रूप में वर्णित की है। मूल रामायण में जनक को कृषिकर्म करते समय कन्या सीता की प्राप्ति हुई थी(1-66)- ऐसा कहा गया है। तथा वही सीता, रामायण की कथा के अन्त में(7-97), धरती में समाविष्ट हो जाती है। अतः कहा जा सकता है कि वेद की सीता और रामायण की सीता अभिन्न है। अब, पारस्कर गृह्यसूत्र में, सीता को जो इन्द्र की पत्नी एवं पर्जन्य की पत्नी कही हो तो, रामायण के राम को भी वैदिक काल का इन्द्र एवं पर्जन्य देव ही समझना होगा। इसी के अनुसन्धान में कहेंगे कि ऋग्वेद के मन्त्रों में जो इन्द्र-वृत्रासुर का संग्राम पौनःपुन्येन वर्णित है, उसी को वाल्मीकि ने रूपान्तरित करके, राम-रावण के युद्ध के रूप में निरूपित किया है! यहाँ पर, राक्षसराज रावण को वृत्रासुर कहने का कारण, उसका समर्थक प्रमाण, यह है कि वाल्मीकि ने रावण के पुत्र का नाम मेघनाद उर्फ इन्द्रजित् या इन्द्रशत्रु रखा है। तथा रावण का भ्राता कुम्भकर्ण भी, वेद के वृत्रासुर के समान गुहा में शयन करना बताया गया है। अब, रावण का मुख्य दुष्कृत्य तो सीता का अपहरण है, उस कथा का सर्जन भी वैदिक मिथक में से किया गया है। यद्यपि वेदमन्त्रों में कहीं पर भी ऐसा वर्णन नहीं मिलता है कि अहि, वल, वृत्र या दस्युओं ने इन्द्र की पत्नी का अपहरण किया हो,[2] तथापि इन्द्रादि देवों के गुरु बृहस्पति की गायों को पणि लोग चुरा कर ले गये थे और उनको एक गुहा में संगोपित कर दी थी- ऐसा निरूपण सरमा-पणि संवाद सूक्त (ऋ. 10-108) में किया गया है।

यदि हम, दुष्काल स्वरूप राक्षस के द्वारा जोती हुई (कर्षित की गई जमीन) सीता का अपहरण करके ले गया है, ऐसा अर्थघटन करें तो- वाल्मीकि ने वैदिक पुराकथा का रूपान्तरण करके, रामपत्नी सीता का राक्षस ने अपहरण किया और उसको समुद्र के पार, अज्ञात अशोकवाटिका में कैद की थी- ऐसा वर्णन किया है। मतलब कि, पणिओं के द्वारा चुराई गई इन्द्र गुरु की गायें की मिथक का उपयोग करते हुए वाल्मीकि ने रामायण में सीतापहरण की कहानी का नवसर्जन किया है। तथा इन्द्र-वृत्रासुर संग्राम की वैदिक मिथक में से प्रेरणा लेते हुए राम-रावण के लंकायुद्ध की घटना का कल्पन किया है!

इसी के अनुसन्धान में हनुमान् के पराक्रम को अवसर प्राप्त होता है। यहाँ प्रॉफे. याकोबी को ऐसा लगता है कि हनुमान् नाम का चरित वाल्मीकि के रामायण में आने के बाद ही प्रसिद्धि में आये होंगे- ऐसा नहीं होगा। यह हनुमान जी

2. ऋग्वेद में वृषाकपि नाम का एक सूक्त (मंडल 10, सूक्त- (86आया है, जिसमें वह इन्द्र की पत्नी, इन्द्राणी का अपहरण करके उठा कर ले गया है- ऐसा कहा गया है। तथापि यह सूक्त बहुत अश्लील प्रतीत हो रहा है और उसका अर्थ भी संदिग्ध या दुर्बोध है। कोई भी विद्वान् उसका सर्वसम्मत अर्थघटन नहीं कर पाया है। अतः प्रॉ. याकोबी ने उस सूक्त को प्रस्तुत चर्चा में उपयोग में लेना उचित नहीं समझा है॥

तो भारतवर्ष की वर्षा-ऋतु के देवता हो ऐसा प्रतीत होता है। अतएव भारत के प्रत्येक ग्राम में हनुमान की मूर्ति की प्रतिष्ठा की गई है। वर्षा-ऋतु का सजीवारोपण प्राप्त किया गया स्वरूप वह रामायण के हनुमान् है - ऐसा कहने का आधार यह है किदक्षिण समुद्र पर से आने वाले पवन ही वर्षाकालिक घने बादलों को खिंच कर ले आते हैं और देश में सर्वत्र वर्षा होती है। उसी तरह से वाल्मीकि के रामायण में भी हनुमान् लंका से उडान भरते हुए, सीता का वृत्तान्त ले कर, राम के पास पहुँचते हैं। इत्थं जैसे दक्षिण समुद्र पर से खिंच कर लाये गये पयोधर बादलों के द्वारा खेती को पुनरुज्जीवन मिलता है, वैसे ही दक्षिण में (लंका में) से अपहृत सीता को भी बाद में वापस लाई जाती है॥[3]

(4)

प्रॉफे. याकोबी ने अपनी विचारधारा को समर्थित करने के लिए यह भी कहा है कि वेदमन्त्रों में इन्द्र के सहायक मित्रमंडल में मरुद्गण का उल्लेख बार बार आता है। तो यहाँ, रामायण में भी हनुमान् को मारुति, मरुत् पुत्र, मरुतात्मज, मरुतनंदनादि कहे गये हैं। यह बिन्दु भी बहुत सूचक है। वर्षाकालिक बादल जैसे कामरुपिन् होते हैं, वैसे हनुमान् भी अपनी इच्छा के अनुरूप अपनी काया को छोटी-बडी बनाते है! हनुमान् शब्द का अर्थ होता है, जो हनु यानी दाढी, हनुमान् यानी दाढीवाला। जिसके निम्न दांतों का जबड़ा थोडा आगे की ओर लम्बा होता है, वह हनु-मत् कहलाता है। बस उसी तरह से, वेदमन्त्रों में इन्द्र को भी शिप्रिन्, शिप्रवत् आदि विशेषण दिये गये हैं। यास्क के निरुक्त (6-17) के अनुसार शिप्रिन् शब्द का अर्थ भी दाढीवाला ही होता है। जिस तरह से रामायण में हनुमान जी समुद्रोल्लंघन करके, लंका में कैद की गई सीता की जानकारी ले आते हैं वैसे ऋग्वेद में भी (ऋ. सरमा-पणि संवाद सूक्त 10-108), पणिओं के द्वारा चुराई गई गायों की जानकारी इन्द्र की पालतु शुनी, जिसका नाम सरमा है वह ले आती है। पणिओं ने जब इन्द्र की शुनी को अपने गुप्त स्थान में आयी हुई देखी तब प्रश्न किया था कि हमारे इस स्थान में तो कोई भी व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक भी नहीं पहुँच सकता है, तो तुम यहाँ, रसा (यानी बृहदाकार नदी) के उस पार, कैसे आयी? इस प्रश्न के उत्तर में सरमा ने कहा है कि-

इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि मह इच्छन्ती पणयो निधीन् वः।
अतिष्कदो भियसा तन्न आवत्तथा रसाया अतरं पयांसि॥

अर्थात्- "हे पणि लोग, मैं इन्द्र के द्वारा प्रेषित दूती हूँ और तुम्हारे द्वारा संगोपित किये (गायों के) निधि को इच्छती हूँ, यानी खोज रही हूँ। रसा नदी के जल ने मेरे उत्प्लवन (=कूद, अतिष्कद) के भय से, मुझे सहायता की है। जिसके कारण मैं रसा के जल को लांघ गई हूँ।" इस तरह से, जैसे सरमा नाम की शुनी इन्द्र के लिए चुराई हुई गायों की सूचना रसा के उस पार जाकर ले आती है, वैसे हनुमान् भी समुद्र को लांघ कर, उस पार रही सीता की जानकारी ले आते हैं। इससे प्रॉफे. याकोबी लगता है कि हनुमान् के द्वारा सीता विषयक खोज के पराक्रम की घटना का प्रेरणास्रोत वाल्मीकि को उपर्युक्त वैदिक सरमा-पणि संवाद सूक्त में से, (उस मिथक में से), प्राप्त हुआ होगा। क्योंकि सरमा एवं हनुमान्, रसा एवं समुद्र, पणिओं का गुप्त निधि एवं अशोकवाटिका में रही सीता, पणि एवं राक्षसवृन्द– इन सब का सादृश्य भारी मात्रा में है। यह तो स्वाभाविक ही है कि दो पुराकथाएँ सर्वांश में एक समान नहीं हो सकती है। किन्तु यदि बहुशः साम्य मिलता है तो वह किसी निर्णय पर पहुँचने में एक निश्चित प्रमाण बनता ही है।

3. Like the clouds he flies hundred of miles through the air over the ocean in order to find out Sita, the personification of agriculture and finds her out. She is brought from the distant South, from which the monsoon comes. Rama succeeds in the task with the help of the apes, i. e. clouds, which pour down showers. – Das Ramayana, p. 99.

वाल्मीकि ने सरमा-पणि संवाद सूक्त (ऋग्वेद 10-108) में से प्रेरणा ली है- उसका समर्थन रामायण में (6-33, 34) से भी मिल रहा है। इसमें कहा गया है कि 'रावण जब सीता को यह जानकारी देता है कि राम और उनके सभी अनुयायी मर गये हैं' -ऐसा मायावी शक्ति से सीता को दिखाता है, तब 'सरमा' नाम की एक राक्षसी ने ही सीताजी को एकान्त में यह बता दिया है कि रावण ने जो दिखाया है, वह सत्य नहीं है। (यद्यपि यह पाठ्यांश प्रक्षिप्त है- ऐसा भी विद्वानों ने माना है, तथापि) रामायण में सरमा नाम की राक्षसी ही सीता को इस तरह से आश्वासन देती हुई, उसकी देखभाल करती हुई बताई है- उस कथानक का प्रेरणास्थान ऋग्वेद का यह सरमपणि संवाद सूक्त ही है, उस वैदिक मिथक का ही परिवर्तन करके, वाल्मीकि ने भी सरमा नाम की राक्षसी का प्रसंग आलिखित किया है। प्रॉफे. याकोबी ने बहुत सुन्दर, सुबोध रीति से, तुलनात्मक अध्ययन के प्रमाणों से अपना पक्ष स्थापित किया है, जिसको नकारना इतना आसान नहीं लगता है ॥

(5)

अब, यदि पारस्कर गृह्यसूत्र में सीता को "पर्जन्य की पत्नी, इन्द्रपत्नी" कही है, तो रामायण के राम को वेद के इन्द्र देवता के साथ अभिन्न सिद्ध करनेवाले प्रमाणों की भी चर्चा करनी होगी। रामायण के राम ने इन्द्र के साथ, जो एकरूपता साधी है, वह दूसरे स्तर पर संपन्न हुई होगी। प्रॉफे. याकोबी बताते हैं कि आर्य-प्रजा पहले तो पशुपालन करते थे, लेकिन वे जब भारत में आये, तब वृष्टि के देवता इन्द्र से जुडी मिथक का जन्म हुआ। (इन्द्र देवता पहले तो आर्यों के युद्ध-देवता War-God थे, लेकिन बाद में उसी को वृष्टि के देवता Rain God बनाये गये हैं।) इस तरह से, कालक्रम से यदि राम को इन्द्र के साथ अभिन्न सिद्ध करना हो तो कृषिक्षेत्र में हल के द्वारा खिंची गई लकीर को, यानी वैदिक "सीता" को, राम की पत्नी बनाना आवश्यक था। जोती गई जमीन की "सीता" यदि राम की पत्नी होगी, तो अब स्वतः सिद्ध हो जायेगा कि दाशरथि राम वेदकाल के इन्द्र ही है। सीता को पारस्कर गृह्यसूत्र में जो इन्द्रपत्नी, पर्जन्यपत्नी कही है, वह रामायण में राम की पत्नी बना कर स्थापित की जाती है।

एवमेव, राम और इन्द्र को अभिन्न बताने के लिए, पाठकों का इस बात की ओर भी ध्यान आकृष्ट करना जरूरी है कि रामायण में राम ने एक त्रिशिरस् (रामायण-3/27) का वध किया है। तो इन्द्र ने भी त्वष्टा के पुत्र वृत्र का वध किया है। तथा ककुद्मती मन्थरा ने यदि राम को देश से निष्कासित करवाये हैं, तो पुराणों में, कालान्तर में, ऐसे भी वर्णन प्राप्त होते हैं कि इन्द्र ने विरोचना नाम के राक्षस की पुत्री, जिसका भी नाम मन्थरा था, उसका वध किया है। इन सन्दर्भों के उपलक्ष्य में सोचना बहुत आवश्यक है।

रामायण के राम को इन्द्र से अभिन्न सिद्ध करने के लिए प्रॉफे. याकोबी ने दूसरी भी चर्चाएं की हैं। जैसे कि, प्रॉफे. वेबर ने कहा था कि कृष्ण के बडे भाई बलराम के साथ राम का कुछ सम्बन्ध हो सकता है। याकोबी कहते हैं कि यह सम्बन्ध आश्चर्यचकित करने वाला है:- हलधर बलराम जिस 'धेनुक' नाम के राक्षस को मारते हैं, वह गर्दभ के रूप में आया था। तो रामायण में, राम ने भी दण्डकारण्य में एक 'खर' नाम के राक्षस को मारा है! अब, इस ओर भी ध्यान आकृष्ट कराना पडेगा कि यदि राम का बलराम के साथ सम्बन्ध बैठता है, तो उस बलराम का इन्द्र के साथ भी सम्बन्ध बिठाना पडेगा। (क्योंकि हमने पहले राम और इन्द्र का अभेदत्व सिद्ध किया है।) तो वेदकालिक इन्द्र-जैसे मादक सोमरस के प्रिय, बल्कि आदती है, वैसे बलराम भी मदिरापान करनेवाले पुराणों में कहे गये हैं!

उपसंहार:-

इस तरह से प्रॉफे. याकोबी ने वाल्मीकीय रामायण की रचना में दो पोषक-तत्त्व बताये है:

अयोध्याकाण्ड की कथा की पूर्वपीठिका में किसी ऐतिहासिक घटना रही होगी। तथा

उसके बाद वाले काण्ड अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड एवं युद्धकाण्ड में निरूपित कथाएं इन्द्र-वृत्रासुर की वैदिक पुराकथाओं (मिथकों) का ही राम-रावण के युद्ध के रूप में काव्यात्मक नवसर्जन है। तदुपरान्त,

सुग्रीवादि वानर सम्बन्धी जो दूसरे आख्यानचक्र "लोकसाहित्य" के रूप में प्रचलित होंगे- उन सब को भी वाल्मीकि ने व्यवस्थित घाट में ढाल कर, उन्होंने अपने रामायण काव्य में संनिविष्ट किये हैं ॥।

पुनरुक्तिपूर्वक यह भी स्मर्तव्य है कि-

1. वाल्मीकि के रामायण में ग्रीक-कवि होमर के काव्यों की कोई अनुकृति नहीं है। क्योंकि होमर वाल्मीकि से परवर्ती-काल में हुए हैं।
2. वाल्मीकि ने किसी भी बौद्ध जातक कथाओं का भी विनियोग नहीं किया है।
3. प्रॉफे. वेबर के विचार बहुशः भ्रामक है।
4. महाभारत में मिल रहा रामोपाख्यान भी पश्चाद्वर्ती है ।

बंगाली विवेचक श्रीदिनेशचन्द्र सेन ने भी ऐसा अभिमत प्रकट किया है कि दशरथ-जातक, दक्षिणभारत में प्रचलित रावण-विषयक कोई आख्यानचक्र एवं वानरपूजा की लोकप्रियता को संमिलित करते हुए वाल्मीकि ने रामायण की रचना की होगी। किन्तु फादर कामिल बुल्के ने ऐसे विचारों को सर्वथा अग्राह्य कहा है। उनके मत से रामायण एक अजस्र धागे में पिरोया हुआ काव्य ही माना है।

इन सब के उपर, जर्मन विद्वान् प्रॉफे. हरमान याकोबी ने जो कहा है कि अयोध्याकाण्ड पर्यन्त कोई सुदूर अतीत की ऐतिहासिक घटना बैठी है, और पश्चाद्वर्ती काण्डों में वैदिक साहित्य में इन्द्रपत्नी सीता, इन्द्र-वृत्रासुर संग्रामादि की मिथकों का विनियोग करते हुए, वाल्मीकि की कविप्रतिभा ने रामायण नाम के आदिकाव्य का नवसर्जन किया है वह मत सर्वाधिक सयुक्तिक लगता है ॥

प्रशिष्ट संस्कृत साहित्य के सर्जन में पुरा-कल्पन, पुराकथाएं यानी मिथकों का प्रभावक महिमा जैसे जैसे स्पष्ट हो जायेगा, वैसे वैसे प्रॉफे. याकोबी का ई.स. 1893 में प्रदर्शित मत पुनः पुनः स्मरणीय एवं मननीय सिद्ध होगा।

। इति श्रीरामाय नमः।

***

देश की सम्पन्नता और निवासियों की विपन्नता?

सन् 1836ई. में मॉन्टगोमेरी मार्टिन ने बुकानन द्वारा किए गये सर्वेक्षण के प्रकाशन करते समय Eastern India के प्रथम खण्ड की भूमिका में लिखा– "It is impossible, however, to avoid remarking two facts, as peculiarly striking : — 1st. The richness of the country surveyed ; and 2ndly, The poverty of its inhabitants.अर्थात् दो बातें अजीब हैं जो मुझे खटक रही हैं, जिनपर टिप्पणी न करना असम्भव लगता है- पहली यह कि देश की सम्पन्नता का सर्वेक्षण किया गया है तथा दूसरा यहाँ के निवासियों की विपन्नता का सर्वेक्षण हुआ है।

हमें सोचना है कि 1810 ई. के आसपास की हमारी सम्पन्नता भी तो आज कहीं विपन्न नहीं हो रही है?

वैष्णव चिह्नों की परम्परा और सन्त पीपाजी

-डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'*

वैष्णवों की परम्परा में छह चिह्नों को शीर पर धारण करना आवश्यक माना गया है- सुदर्शन चक्र, पाञ्चजन्य, धनुष, गदा, खड्ग, शंख-चक्र एवं पद्म। इन चिह्नों को शरीर के किस अंग में अंकित करना चाहिए, इस विषय पर स्वामी रामानन्द के शिष्य सन्त पीपाजी ने बहुत कुछ लिखा है। परम्परागत शास्त्रीय ग्रन्थों में भी इस पर विस्तार से वर्णन आया है। लेखक ने इन चिह्नों के अंकन पर शास्त्र तथा परम्परा में प्रचलित मतों का विवेचन यहाँ किया है।

भक्त पीपाजी के लिए गुजरात सहित उत्तर भारत में यह विश्वास प्रचलित है कि उन्होंने स्वामी रामानन्द दीक्षा ग्रहण की और तत्कालीन सन्त के साथ तीर्थाटन, भारत भ्रमण किया। इस दौरान उनके साथ ऐसी घटनाएँ भी जिले पारलौकिक माना जा सकता है। सन्त समुदाय सहित भारतीय जन समुदाय में ये प्रसङ्ग अति श्रद्धा के रूप में स्वीकार्य रहे हैं। इन्हीं में से एक प्रसङ्ग है कि गुजरात के द्वारका में भगवान हरि के दर्शन के बाद जब उन्होंने समुद्र में छलाङ्ग लगा ली तो भगवान् ने उन्हें छापें प्रदान की। ये चार छापे विष्णु-चिह्न या वैष्णव आयुध हैं- शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म।

जब पीपाजी इन चिह्नों के लेकर द्वारका में लौटे तो वहाँ उपस्थित सन्त, श्रद्धालुओं ने उनकी इस उपलब्धि पर गौरव अनुभव किया और तब से यह मान्यता चली आई है कि जो भी कोई द्वारका यात्रा करता है, वह अपने शरीर पर उक्त आयुधों की छापें लगवाकर परम वैष्णव होने का लाभ लेते हैं।

भक्तिमती मीराबाई ने पीपाजी की इस अलौकिक उपलब्धि का गुणगान किया है

पीपा कू प्रभु परचो दीनो, दियो रे खजानो पूर।[1]

सन्त मोहनलालजी ने अपने पद में कहा है

चार छाप पीपा दीनी, पीर हरी मीरा की।
नामदेव की छान छवाई, खेती जाट धना की।[2]

इसी प्रकार भक्तमालों, परिचई साहित्य में भी यह प्रसङ्ग मिलता है किंतु पीपाजी के साथ यह उपलब्धि प्रसङ्ग कैसे जुड़ा, यह आश्चर्यकारी है क्योंकि

[1] मीरा पदावली,
[2] सन्त मोहनलाल की वाणी

*विश्वाधारम, 40 राजश्री कॉलोनी, विनायकनगर, उदयपुर- 313001, राजस्थान, दूरभाष संपर्क : 099280-72766, मेल : skjugnu@gmail.com

पीपाजी से पूर्व भी वैष्णव चिह्नों को धारण करने की परम्परा हमारे यहाँ मिलती है। यह परम्परा लगभग 2500 वर्षों से भारत में उत्तर से लेकर दक्षिण तक विद्यमान रही।

वैष्णव सम्प्रदाय के विशिष्ट प्रसार के क्रम में इसके एक मत पाञ्चरात्र सम्प्रदाय' का अस्तित्व है, इस मत में वैष्णव चिह्नों को धारण करने की विशिष्ट परिपाटी रही है। इस सम्प्रदाय में वैष्णव चिह्नों को धारण करने का परम्परा को एक संस्कार के रूप में लिया जाता है। जो भक्त इन छापों को धारण नहीं करता, उसे वैष्णव नहीं माना जाता। स्मार्त मत में भी इस प्रकार की वैचारिक धारा का प्रचार रहा है।

वैष्णव पाञ्चरात्र मत क्या है?

पाञ्चरात्र मत भगवान विष्णु की अर्चना, विष्णुमय संसार की सृष्टि और संहार के प्रति आस्था का सूचक है। इसका सामान्य अर्थ है- पाँच रात्रियों में किया गया यज्ञ। यजन के लिए रात्रि की प्रधानता ही इस नाम में हेतु ज्ञात होती है। पाद्मसंहिता' के अनुसार पाँच विरोधी दर्शन (बौद्ध, जैन, सांख्य, न्याय और वेदांत) को जो अंधकारमय या रात्रितुल्य अपने प्रकाश से कर देता है, वह पाञ्चरात्र शास्त्र या मत है। अहिर्बुध्न्यसंहिता व नारदसंहिता के अनुसार रात्रपद ज्ञान का वाचक है। ये पञ्चविध ज्ञान हैं परमतत्त्व, मुक्ति, भुक्ति, योग तथा विषय या संसार जिनके ज्ञान का आपादक यह शास्त्र कहा गया है। 'ईश्वरसंहिता' का मत है कि पाँच मुनियों को सर्वप्रथम इस शास्त्र का ज्ञान हुआ, इसीलिए यह मत पाञ्चरात्र कहलाया। ये पाँच मुनि हैं- शाण्डिल्य, औपगायन, मौञ्जायन, कौशिक तथा भारद्वाज। यह भी प्रसिद्ध है कि पाँच दिवा-रात्र की कालावधि ने नारायण ने इस विद्या का उपदेश किया था।

लगभग पाँचवीं सदी तक वर्तमान रूप में संपादित हो चुके 'महाभारत' में पाञ्चरात्र सम्प्रदाय का उल्लेख मिलता है-

पञ्चरात्रस्य कृत्स्नस्य वेत्ता नारायणः स्वयम्। सर्वेषु च नृपश्रेष्ठ ज्ञानेष्वेतेषु दृश्यते॥[3]

यामुनाचार्य के द्वारा आगमप्रामाण्यम् में महाभारत से उद्धृत वचन से ज्ञात होता है कि नारायण के मुख से उद्गीत पाञ्चरात्र धर्म को महर्षि नारद ने अधिगत किया और अन्य मुनि गणों तक इसका प्रसार किया

इदं महोपनिषदं चतुर्वेदसमन्वितम्। साङ्ख्ययोगकृतान्तेन पञ्चरात्रानुशब्दितम्॥
नारायणमुखोद्गीतं नारदोऽश्रावयन्मुनीन्।[4]

यही बात नारद-पाञ्चरात्र में भी कही गई है। नारद ने इसे 'महद्दिव्यशास्त्र' कहा है

पञ्चरात्रं महद्दिव्यं शास्त्रं श्रुतिविभावनम्। विशेषेणाधिगन्तव्यं गीतं भगवता स्वयम्॥[5]

यही नहीं, महाभारत से पूर्व जबकि ब्राह्मण ग्रन्थों का संपादन हो चुका था, यह सम्प्रदाय अस्तित्व में था। ईसा पूर्व छठी सदी तक अस्तित्व में आ चुके 'शतपथब्राह्मण' में वर्णन है कि श्रीनारायण ने पूर्वकाल में यह कामना की थी

[3] महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय 337, श्लोक संख्या- 63, भण्डारकर प्राच्य विद्या संशोधन मन्दिर, पूना, तृतीय खण्ड, शाके 1896, पृ. 2481.

[4] महाभारत के नाम पर उद्धृत, आगमप्रामाण्यम्, यामुनाचार्य, स्वामी श्रीराममिश्र (सम्पादक), वाराणसी, 1937 ई., पृ. संख्या 64

[5] नारद पाञ्चरात्र (भारद्वाज-संहिता), 3, 40, सरयूप्रसाद मिश्र (टीकाकार), वि.सं. 1962 (1905ई.), खेमराज श्रीकृष्णदास, मुंबई, पृ. 48

कि मैं सब भूतों को अतिक्रमण करूं और मैं ही सब कुछ बनूं। उन्होंने इस पाञ्चरात्र पुरुषमेध नामक यज्ञ विधि का दर्शन किया, उसका आयोजन किया और उससे यज्ञ किया और उस यज्ञ को करने से वे सब भूतों का अतिक्रमण करते हुए सर्वेश्वर बन गए। नारायण द्वारा अनुष्ठित होने से इस पुरुषमेध की महिमा चारों ओर हुई। इस पुरुषमेध के विशेषण रूप से उपर्युक्त ब्राह्मणवचन में पाञ्चरात्र शब्द का प्रयोग मिलता है

स वा एष पुरुषमेधः पाञ्चरात्री यज्ञः क्रतुर्भवति।

वस्तुतः भगवान् विष्णु के उपासक सत्त्वगुणभूयिष्ट होते थे। वे अपने यज्ञ-याग में पत्र, पुष्प, फल, जल, घृत, दुग्ध तथा हविष्यान्न का ही उपयोग करते थे, पशु हिंसा के सर्वथा विरोधी थे ही, अतः एव वे सत्त्ववत् कहलाए। इसी शब्द से सत्त्वत् बना और इस पद का प्रयोग 'ऐतरेयब्राह्मण' और 'शतपथब्राह्मण' में भी हुआ-

भरताः सत्त्वतां वित्तिं प्रयन्ति।[6]

और कहा गया है

तदेतद्गाथयाभिगीतम्- शतानीकः समन्तासु मेध्यं सात्राजितो हयम्।
आदत्त यज्ञं काशीनां भरतः सत्त्वतामिव॥[7]

सत्त्वतों का धर्म सात्त्वत नाम से जाना गया। इसी सात्त्वत धर्म के दो उपभेद हुए-

1. पाञ्चरात्र धर्म और 2. वैखानस।

इनमें पाञ्चरात्र नाम की शाखा बड़ी थी जबकि वैखानस लघु। विखना अर्थात् जगत्स्रष्टा द्वारा उपदिष्ट होने के कारण लघु शाखा का नाम 'वैखानस' हुआ तथापि इसका अधिक प्रचार नहीं हुआ और पाञ्चरात्र इतना लोकप्रिय हुआ था कि उसे सात्त्वतधर्म का ही पर्याय समझा जाने लगा।[8] तन्त्रशास्त्रों का पर्याय पाञ्चरात्र के शास्त्रों को तन्त्र की कोटि में गिना जाता है। प्रसिद्ध विदेशी विद्वान एफ. ओट्टो श्रेडर ने पाञ्चरात्र मत में अधिमान्य अहिर्बुध्न्यसंहिता का संपादन करते हुए इस सम्प्रदाय के उद्भव और पल्लवन पर प्रकाश डाला है। उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ "इंट्रोडक्शन टू द पाञ्चरात्र एण्ड द अहिर्बुध्न्य संहिता" का प्रकाशन 'द अड्डयार लाइब्रेरी एंड रिसर्च सेंटर', चैन्नई द्वारा 1916 में किया गया। इस सम्प्रदाय के ग्रन्थों को शास्त्र, तन्त्र और आगम के साथ-साथ संहिता भी कहा जाता है।

इसके ग्रन्थों का अनेक मुनियों ने प्रणयन किया। ग्रन्थों का नामकरण भी उन्हीं मुनियों के नाम पर होता रहा। जैसे - ब्राह्मपाञ्चरात्र, शैवपाञ्चरात्र, कौमारपाञ्चरात्र, वासिष्ठपाञ्चरात्र, कापिलपाञ्चरात्र, गौतमीयपाञ्चरात्र और नारदीयपाञ्चरात्र। ये सात नाम नारद-पाञ्चरात्र नामक ग्रन्थ में मिलते हैं जबकि अग्निपुराण में पाञ्चरात्र ग्रन्थों के 25 नाम और मिलते हैं जो कि इस पुराण के रचनाकाल, लगभग 10 सदी तक बहुमान्य हो चुके थे। जैसे- हयशीर्ष, त्रैलोक्यमोहन, वैभव, पौष्कर, प्राह्लाद, गार्ग्य, गालव, नारदीय, श्रीप्रश्न, शाण्डिल्य, ऐश्वर, सत्योक्त, शौनक, वासिष्ठ, ज्ञानसागर, स्वायम्भुव, कापिल, ताय, नारायणीय, आत्रेय, नारसिंह, आनंद, आरुण, बौधायन और अष्टाङ्गपाञ्चरात्र। इस प्रकार इस सम्प्रदाय में दो सौ से अधिक संहिताएँ प्रचलित है, किंतु 108 संहिताओं का विशेष आदर है। श्रेडर ने इसी वर्ग में अगस्त्य, अनिरुद्ध, उपेंद्र, काश्यप संहिताओं के विद्यमान रहने की सूचना देते हुए उनको

[6] ऐतरेयब्राह्मण 2, 3, 25
[7] शतपथब्राह्मण 13, 5, 4, 21
[8] कल्याण मासिक, गोरखपुर का विष्णु अंक 1973, पृष्ठ 414

भी परिगणित करने का सुझाव दिया है। इन संहिताओं में जो विषय मिलते हैं, उनके आधार पर 'शब्दार्थचिंतामणि' में तन्त्रशास्त्र की परिभाषा बताई गई है

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च मन्त्रलक्षणमेव च। देवतानां च संस्थानं तीर्थानां चैव वर्णनम्॥
तथैवाश्रमधर्माच मन्त्रसंस्थानमेव च। संस्थानचैव भूतानां यन्त्राणां चैव निर्णयः॥
उत्पत्तिर्विबुधानाच तरुणां कल्पसंज्ञितम्। संस्थानं ज्योतिषाचैव पुराणाख्यानमेव च॥
कोशस्य कथनश्चैव व्रतानां परिभाषणम्। शौचाशौचस्य चाख्यानं नरकाणाच वर्णनम्॥
हरिचक्रस्य चाख्यानं स्त्रीपुंसोश्चैव लक्षणम्। राजधर्मो दानधर्मो युगधर्मस्तथैव च॥
व्यवहारः कथ्यते च तथा चाध्यात्मवर्णनम्। इत्यादिलक्षणैर्युक्तं तन्त्र'मित्यभिधीयते॥[9]

दसवीं सदी में यामुनाचार्य (918-1038 ई.) ने 'आगमप्रामाण्य' नामक ग्रन्थ की रचनाकर पाञ्चरात्रशास्त्र का माहात्म्य सिद्ध किया। रामानुजाचार्य (1017-1137 ई.) ने 'ब्रह्मसूत्र' के दूसरे अध्याय के द्वितीय चरण के सूत्रों पर अपना भाष्य करते हुए पाञ्चरात्रतन्त्र की प्रमाणिकता को प्रतिपादित की। इसी प्रकार वेंकटनाथ ने 'पाञ्चरात्ररक्षा' नामक ग्रन्थ का प्रणयन कर इस शास्त्र की परम्परा को विशेष रूप से विवेचित करने का उपक्रम किया।

इस प्रकार यह सम्प्रदाय विशेष रूप से विख्यात रहा है। आज भी दक्षिण में यदुशैल पर 'सात्वतसंहिता' के मतानुसार विष्णु अर्चन होता है। श्रीरङ्ग में 'पौष्करसंहिता' और हस्तिशैल में 'जयाख्यसंहिता' का विशेष आदर है तथापि हस्तिशैल में, पाद्मसंहिता, श्रीरङ्ग में परमेश्वरसंहिता' और यादवाद्रिशैल के वैष्णायतन में ईश्वरसंहिता' के निर्देशानुसार विधि-विधान पूरा किया जाता है।

राजस्थान में पाञ्चरात्र मत का प्रसार

राजस्थान में पाञ्चरात्र मत के प्रसार का प्रमुख केंद्र मेवाड़ रहा है जहां कि चित्तौड़गढ़ से 12 किलोमीटर दर नगरी गाँव में अभिलेख तक मिला है। यह ईसापूर्व द्वितीय सदी का अभिलेख है जिसमें संकर्षण या बलराम और वासुदेव या श्रीकृष्ण की पूजा के स्थान के रूप में निर्मित नारायणवाटिका के लिए प्राकार बनवाने का उल्लेख है।[10] यहाँ यह स्मरणीय है कि यह रचना आजकल के देवरों के रूप में ही रही थी जिसमें स्थण्डिल पर शालग्राम रूप में संकर्षण और वासुदेव के अर्चा-विग्रह को रखकर पूजा की जाती थी। इस दृष्टि से मेवाड़ के देवरों के स्थापत्य ने देवालय स्थापत्य के विकास में बहुत योगदान किया। आज भी देवरों का पीछे का भाग धनुषाकार बनवाकर उस पर कलश रखा जाता है जिसकी परिकल्पना देवालयों में शिखर के रूप में की गई है।[11] उल्लेखनीय है कि पाञ्चरात्र मत में संकर्षण, वासुदेव आदि चतुव्यूह के अङ्कन और पूजन की परम्परा का प्रवर्तन और पल्लवन हो चुका था। ईसा पूर्व दूसरी सदी से ही इसके प्रमाण मिलने लगते हैं।[12] तथा मथुरा इनका मुख्य केंद्र था। अहिर्बुध्न्यसंहिता में चतुर्ग्रहों के संकल्प और व्यूहान्तर तथा विभव आदि भेदों की परिकल्पना भी मिलती है

मामासिषुरमुष्वाश्च रहस्यानायवेदिनः। ध्यान्तरविभावादिन मेदान् सङ्कल्पकल्पिताम्॥[13]

[9] 'शब्दार्थचिंतामणि' में तन्त्र की परिभाषा
[10] प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, खण्ड 1, पृष्ठ 204-205
[11] सूत्रधार गोविंदकृत कलानिधि : देवालय शिखरविधान, संपादक श्रीकृष्ण 'जुगनू', भूमिका भाग
[12] एस. एन. चतुर्वेदी : ए यूनिक चतुव्यूह इमेज, आर. के. त्रिवेदी वॉल्यूम 1, पृष्ठ 147 [13] अहि. 5, 45

इस सम्प्रदाय में छह विग्रह या अर्चा की पूजा मान्य है। ये हैं- ध्रुवार्चा, कर्मार्चा, उत्सवार्चा, बल्यर्चा, तीर्थार्चा तथा शयनार्चा । इन्हीं को कर्मार्चा, बल्यार्चा, यात्रार्चा, कृत्रिमालयार्चा, यागार्चा और स्नानार्चा नामों से भी जाना जाता है। ये प्रतिमाएँ या वेर अथवा विग्रह तीन प्रकार के हैं- चित्र, चित्रार्थ तथा चित्राभासी।

चित्तौडगढ जिले के ही प्रतापगढ़ के निकटस्थ अवलेश्वर गांव से भागवत सम्प्रदाय का एक अभिलेख मिला है। इसी प्रकार उदयपुर के आहाड़ के आदिवराह मन्दिर में तो पाञ्चरात्र विधि से ही सेवा होती थी। यह मन्दिर गहिल नरेश अलर के शासनकाल में लगभग 10 सदी में बना था।[14]

इस प्रकार इस सम्प्रदाय का प्रचार ईसा पूर्व दसरी से लेकर ईसा बाद दसवीं सदी तक राजस्थान में वैष्णवीय पान मत का प्रचार था। बाद में भी वैष्णवधर्म का पल्लवन होता रहा किंतु शैवों के जागरण, लाकलीश पाशपत संपटाय राज्याश्रित सुदृढ़तर प्रसार से वैष्णवधर्म को धक्का लगा किंतु महाराणा कुंभा के काल (1433-1468 ई.) में इसका फिर अभ्युदय हुआ तथापि पाञ्चरात्र मत अपना स्थान नहीं पा सका।

वैष्णव चिह्न या लाञ्छन धारण संस्कार

इस सम्प्रदाय में विष्णु के चिह्नों को धारण करने की विशिष्ट परिपाटी रही है। इस सम्प्रदाय के नारदपाञ्चरात्रोक्त भारद्वाज संहिता में वैष्णवचिह्न या लाञ्छन धारण को एक संस्कार के सदृश्य स्वीकार करते हए वैष्णवों के लिए इसका निर्देश किया गया है। इसके दो पाठ मिलते हैं। एक पाठ को डैनियल स्मिथ ने संपादित किया, जो कोलकता से 1922 ई. में देवनागरी लिपि में प्रकाशित हुआ। दूसरा पाठ वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, मुम्बई से पहले मूल और 1905ई. में पं. सत्यप्रसाद मिश्र की टीका के साथ प्रकाशित हुई। हाल में आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या के साथ 1996 ई. में निकला है जिसकी भूमिका में बाबूलाल शुक्ल ने लिखा है कि यह नारदपाञ्चरात्र का वार्तिक भूत परिशिष्ट है।[15] डॉ. रामप्यारे मिश्र ने माना है कि भारद्वाजसंहिता रामानुजाचार्य के बाद की रचना है।[16]

इस ग्रन्थ में वैष्णवों के लिए छह प्रकार की वृत्तियाँ बताई गई हैं- विहित कर्मों का आचरण करना, प्रतिषिद्ध कर्म हिंसादि का निषेध, अपने इष्ट की ओर दृष्टि या उसका ज्ञान, उसकी भक्ति, उसी इष्ट (विष्णु) के शङ्खादि चिह्न लाञ्छन को धारण करना तथा पूज्य आचार्यों की सेवा करना

वृत्तिश्च विहिताचार: प्रतिषिद्धविवर्जनम्। दृष्टिभक्तिस्तथा लक्ष्म सतां सेवेति षड्विधा।[17]

उक्त भोक में लक्ष्म से आशय छाप लगवाना है। इन छापों को हरिलाञ्छन भी कहा गया है जिन्हें शरीर पर

[14] राजेंद्रप्रसाद बागड़ी ; प्राचीन मेवाड़ का सांस्कृतिक इतिहास अपमानित शोधप्रबंध, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर 2002 के अंतर्गत वैष्णधर्म अध्याव

[15] नारदपाञ्चरात्र-भारद्वाजसंहिता, बाबूलाल शुक्ल द्वारा सम्पादित, पृष्ठ 19

[16] वैष्णव पाञ्चरात्र आगम, पृष्ठ 273

[17] नारदपाञ्चरात्र, सरयूप्रसाद मिश्र (टीकाकार), उपरिवत् 1, 72, पृ. 25.

धारण कर गुरुजनों की सेवा को महत्त्वपूर्ण माना गया है-

अर्चादिष्वचर्यन् विष्णुमङ्कितो हरिलाञ्छनैः॥ सेवते यद् गुरून् भक्त्या सेयं वृत्तिः परा मता ॥[18]

इस ग्रन्थ में कई स्थानों पर विष्णु-भक्त के लक्षणों पर विमर्श हुआ है और टीकाकार ने सर्वत्र इन छापों, लाञ्छनों की अभिधार्यता पर जोर दिया है। तीसरे अध्याय का 'सत्सेवनाधिकार' भक्ति आंदोलन की उस उक्ति को परिभाषित करता है कि उस काल में भक्ति के द्वार सबके लिए खुल गए थे-

जाति-पाँति पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।

ग्रन्थकार का कथन है कि चतुर्वर्ण ही नहीं, नारी व अन्य वर्ग भी विष्णु के चक्रादि आयुध या लक्ष्म अपने तथा अपने परिवार के सभी जनों के शरीरों पर धारण कर सकते

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्य शूद्रा नारी तथेत्तरः। चक्राद्यैरयेद् गात्रमात्मीयस्याखिलस्य च ॥[19]

इन लाञ्छनों को धारण करने का प्रयोजय यह बताया गया है कि इससे अनिष्टों की निवृत्ति होती है तथा जगदीश की परमैकान्तिकता की पुष्टि होकर आरब्ध कर्मों में सिद्धि मिलती है।[20] कहा गया है कि इन चिह्नों को दोनों ही भुजाओं पर, ललाट प्रदेश, मस्तक, शरीर में, हृदय स्थल पर मन्त्रपूर्वक दाहन के साथ अङ्कित करवाया जाए

बाह्वोर्ललाटे शिरसि हृदये चाग्रजन्मनाम्। शङ्खचक्रगदाशाङ्गखड्गः मन्त्रण दाहयेत् ॥[21]

ये आयुध चिह किस प्रकार धारण किए जाते हैं, इस संबंध में कहा गया है कि विष्णु मन्दिर की स्थित आग, नैवेद्य के लिए जलती आग, गुरु की अग्निहोत्रादि हवन कार्य की आग में अथवा खुद के घर की पवित्र आग में चक्रादि मुदाओं को तपायें और फिर उभरते हुए अङ्गों को तप्त कर अङ्कन करें। ये मुद्राएं सोना, चांदी, ताँबे की बनी होती थी। इनको तब ही अकित करना चाहिए जब तक कि साधक दासभावना का अन्तरात्मा से अनुभव नहीं करता

विष्णोरायताग्नौ वा गुरोरात्मन एव वा। हुते हेमादिभिस्ततै सुरूपैरचितैः क्रमात्॥
दासभूतं यदात्मानं बुद्ध्येत परमात्मनः । तदैव गात्रं कुर्वीत शङ्खचक्रादिलाञ्छितम्॥[22]

कई बार सभी चिह्न अनिवार्य न होकर कोई एक चिह्न भी विकल्प रूप में शरीर पर अकित करवाया जा सकता है और इनका परिणाम यह होता है कि अनिष्टकारी ताकतों के बल से मुक्ति बनी रहती है।[23] नारदपाञ्चरात्रकार ने कहा है कि ये चक्र तथा शङ्ख चिह्न अग्निषोमीय स्वरूप माने गए हैं अर्थात् चक्र अग्नि तथा अब्ज या शङ्ख सोमरूप हैं, सभी देव गणों को इन्हीं रूपों वाला माना गया है। ऐसे में चक्र का धारण करना मुख्य है अथवा दोनों में से किसी एक को ही मुख्य मानते हुए धारण करे तो भी वह परमफल का दाता होता है। यह भी कहा गया है कि नारायण के सभी आयुधों में शङ्ख और चक्र की प्रमुखता है, इनसे अङ्कित होने पर वह सभी आयुधों से अङ्कित होकर भागवत के रूप में मान्य हो जाता है।[24] पवित्रारोपण आदि उत्सवों पर वैष्णवाश्रय के हेतु के रूप में भी इन चिह्नों को स्वीकार्य किया गया है-

[18] तत्रैव, श्लोक 1. 74, पृ. 26
[19] तत्रैव, 2. 59, पृ. 53.
[20] तत्रैव, 2. 60, पृ. 53
[21] तत्रैव 2. 61, पृ. 54
[22] तत्रैव, 2. 62-63, पृ. 54.
[23] तत्रैव, 2. 64, पृ. 55
[24] तत्रैव, 2. 65-66, पृ. 55

पवित्राण्यब्जबीजानि शङ्खचक्राङ्कभूषणम्। धारयेद् वैष्णवं नाम वैष्णवाश्रयमेव वा ॥[25]

इस ग्रन्थ में इन लक्षणों का इतना महत्व बताया गया है कि स्थल-स्थल पर इनकी चर्चा हुई है और अन्य देवों के लक्ष्मों या चिह्नों को त्याग करने का निर्देश है। इससे यह भी लगता है कि उस काल में अन्य सम्प्रदाय में भी चिह्न धारण की व्यवस्था थी। इसलिए अन्य लक्ष्मों के निषेध रूप में इस ग्रन्थ में लक्ष्मविरुद्धाधिकार' नाम से पृथक् विस्तृत विमर्श भी किया गया है।

इसी प्रकार, भारद्वाज-संहिता में इन चिह्नों को वैष्णव-भक्ति का भूषण कहा गया है।[26]इन चिह्नों को धारण करने से भक्त पापों से दग्ध नहीं होते, वे हरि के प्रिय हो जाते हैं

आमा ह्यतसतनवस्तप्ताङ्गाः हरिलाञ्छनैः। सृशृता भोग्यतां प्राप्य भुज्यन्ते परमात्मना॥[27]

इन चिह्नों का कलिकाल में अतिशय महत्त्व बताया गया है। पाञ्चरात्र की व्यवस्था है कि विष्णु के लिए कृतयुग में ध्यान, त्रैतायुग में मन्त्रयोग, द्वापर में पूजन तथा कलिकाल में चक्रांद्यकन कार्य नारायण की प्रसन्नता के अतिशय का आपादक है। आठ से लेकर सोलह वर्ष की आयु तक काल विहित रहने पर इनको धारण किया जा सकता है

ध्यानेन मन्त्रयोगेन पूजनेनाङ्कनेन च। तोषयन्ति जगन्नाथं वासुदेवं युगक्रमात्॥
अष्टमात् षोडशाद्वाद्वा धार्य चक्रादिभूषणम्। प्रतसैरङ्कनं पश्चात् सदा वा भूषणं स्त्रियः॥[28]

इस प्रसङ्ग में यह बात भी विशेष है कि ये चिह्न न केवल अपने शरीर पर अपितु जो पालित जीव-प्राणी हो, उसको भी धारित करवाने पर जोर दिया गया है। यह इस परम्परा को दर्शाता है कि सर्वत्र विष्णमेव का दर्शन करने पर जोर दिया गया

शिष्यपुत्रकलत्राणां भृत्यानाञ्च गवामपि। कुर्यादचेतनाञ्च वैष्णवं नाम लक्ष्म च॥[29]

कौन-सा चिह्न किस अङ्ग पर धारण करवाया अथवा करना चाहिए, इस संबंध में यह सूची दी गई है

सुदर्शनचक्र	दक्षिण भुजा
पाञ्चजन्य	बाँयी भुजा
धनुष	मस्तक
गदा	ललाट
खड्ग	वक्षः प्रदेश
शंख-चक्र	दोनों बाजू

इस प्रकार पाञ्चरात्र मत में विष्णु के चिह्नों को धारण करने का महत्व और निर्देश अपरिहार्य रूप से मिलता है।

सन्त पीपाजी द्वारा इनके क्षीरसागर से विष्णु से प्राप्त कर लाने का प्रसङ्ग यह प्रतिपादित करता है कि उन्होंने उस काल में भक्ति आंदोलन को पर्याप्त रूप से विस्तार दिया। वे स्वयं गुजरात, सौराष्ट्र में वैष्णव भक्ति के प्रचार के

[25] तत्रैव, 2. 79, पृ. 60. [26] तत्रैव, 2.60, पृ. 54 [27] तत्रैव, 64
[28] तत्रैव 61-62 [29] तत्रैव 63

महत्वपूर्ण सोपान बने। भक्तमालों, भक्त चरितों में यह प्रसङ्ग अतिशयोक्ति रूप में लिखा गया हो और उन्हें समुद्र-अवगाहन करते बताया गया हो किंतु यह लगता है कि उस काल में नाना भक्ति-क्षीरार्णव या धाराओं का अवगाहन करने के उपरान्त उन्होंने चक्रादि से युक्त होकर वैष्णव भक्ति का आदर्श प्रस्तुत किया था रामानुज के बाद विधर्मियों के आगमन काल में एक पहचान के रूप में यह आवश्यक भी था।

बहुत सम्भव है कि पीपाजी ने इसके लिए दक्षिण भारत में भी तीर्थाटन किया हो। यों 'भविष्यपुराण' तो यह भी सिद्ध करता है कि दक्षिण में पीपाजी की इतनी ख्याति हुई थी, लोग उन्हें वहीं का निवासी मानने लगे थे और उनके अतिशय व्यक्तित्व के धनी होने का कारण सोम नामक वसु के अंश के कलि शुद्धार्थ पीपाजी के रूप में आना स्वीकारा। पुराणकार ने लिखा है कि पीपाजी दाक्षिणात्य राजगृह में वैश्यशिरोमणि राजकुल में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने अपने पिता के समान ही यथावसर राजपद पर सम्मानित होकर राज्य का उपभोग किया। पश्चात् रामानन्द के शिष्य होकर उन्होंने द्वारका की यात्रा की। वहाँ रहकर उन्होंने श्रीकृष्ण द्वारा प्रेततत्त्वनाशिनी स्वर्णमुद्राओं को पाया और वैष्णवों को वितरित करने का नियम लिया था

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं वसवो हर्षितास्त्रयः। स्वांशेन भूतलं जग्मुः कलिशुद्धाय दारुणे॥
दाक्षिणात्ये राजगृहे वैश्यजात्यां समुद्भवः। पीपा नाम सुतः सोमः सुदेवस्य तदा हृभूत्॥
कृतं राज्यपदं तेन यथा भूपेन तत्पुरे। रामानन्दस्य शिष्योऽभूद्वारकां स समागतः॥
हरेर्मुद्रां स्वर्णमयीं प्राप्य कृष्णात्स वै नृपः। वैष्णवेभ्यो ददौ तत्र प्रेततत्त्वविनाशिनीम्॥[30]

इस प्रकार पीपाजी के योगदान को नवीन अर्थ में देखा जाना चाहिए। उन्होंने झालावाड़ के गागरोन नरेश के रूप में जो भी योगदान किया, वह कदाचित् कम ही जानकारी में है किंतु काशी की यात्रा के साथ-साथ रामानन्द से वैष्णवी दीक्षा और सन्त मण्डली के साथ तीर्थाटन करते हुए वैष्णवी भक्ति के प्रचार का प्रयास किया, वह निश्चय ही महत्त्वपूर्ण माना जाना चाहिए। यद्यपि उनके एक पद 'पौढ़े प्रभु द्वारिका रणछोड़, द्वारका में झालर बाजै सङ्घन की घनघोर' को छोड़कर वैष्णव भक्तिपरक कोई पद नहीं मिलता, तथापि निर्गुणी पदों को समाज ने महत्त्वपूर्ण माना। गुरुग्रन्थ साहब में भी पीपाजी का पद' उनके निर्गुणभक्ति पक्ष को ही दर्शाता है। फिर पाञ्चरात्र मतानुसार दाह्यचिह्नों के विपरीत चंदन की छापों की परम्परा का प्रचलन उनकी नवीन भक्तिधारा भी हो सकती है। इस प्रकार पीपाजी के विषय में नवीन शोधानुसंधान भी किया जाना चाहिए।

***

[30] भविष्यपुराण प्रतिसर्गपर्व 17, 83-85

मिथिला के पुरातात्त्विक स्रोत में

राम और शिव की उपासना का समन्वय

डा. सुशान्त कुमार*

उपासना के क्षेत्र में हम सर्वधर्मसमन्वयवाद के पुजारी रहे हैं। वैष्णव, शैव, शाक्त, गाणपत्य, सौर, आग्नेय ये सभी शाखाएँ हमें एक-दूसरी मान्यताओं का आदर करना सिखाती है। व्यापक रूप में सनातन परम्परा समभाव एवं समन्वय का संदेश देती है। मध्यकाल में स्वामी रामानन्द ने इस भावना को रामावत-परम्परा के द्वारा अधिक मुखर किया। फलतः उनके बाद हर क्षेत्र में हमें विशिष्ट एकात्मकता दिखाई देती है। रामानन्द कृत शिवराम-स्तोत्र की वाणी का केन्द्रीय भाव पुरातात्त्विक साक्ष्य के साथ यहाँ प्रस्तुत है।

उत्तरी बिहार का इलाका प्राचीन विदेह के नाम से ज्ञात रहा है। मिथिला इसकी राजधानी थी और कालान्तर में मिथिला सम्पूर्ण इलाके के लिये जाना जाने लगा। प्राचीन काल में कमोबेश यह इलाका सदानीरा से महानन्दा और हिमवन्त से गंगा तक फैला हुआ था। अनादि काल में इस क्षेत्र से बड़े-बड़े ब्रह्म विशारद ज्ञानी हुए हैं, जिनकी ख्याति दूर दूर तक फैली हुई थी। मिथिला में राम और शिव दोनों को दामाद के रूप में स्वीकार किया जाता है। राम के संबंध में तो जनकपुर के धनुष यज्ञ स्वयंवर की कथा प्रसिद्ध है ही, जिसमें सीता का विवाह राम के द्वारा किया शिव के धनुष को तोड़ने के कारण हुआ था। इसके पीछे एक कहानी है। कहा जाता है कि महाराजा जनक के यहाँ शिव धनुष रखा हुआ था। बाल्यावस्था में एक दिन किसी कार्य के दौरान सीता ने शिव के धनुष को उठा लिया था, जिससे चकित होकर जनक ने धनुष तोड़ने वाले के साथ जानकी के विवाह की प्रतिज्ञा कर ली थी। स्वयंवर में देश देशांतर के राजाओं ने इस धनुष को नहीं उठा पाया था। ऐसी विकट परिस्थिति में अयोध्या के श्री राम ने गुरु विश्वामित्र के आदेश से शिव धनुष तोड़ कर मिथिला के राजा जनक का विषाद दूर कर सीता से विवाह की अर्हता प्राप्त की। आज भी मिथिलांचल में विवाहपंचमी के दिन 'सीता स्वयंवर' रचाया जाता है, प्राचीन काल के उस परम्परा का निर्वाह किया जाता है। सीता-राम के विवाह को याद किया जाता है। इस विवाह प्रकरण के सुन्दर प्रसंग की चर्चा विवाह पंचमी के दिन रामजानकी विवाहोत्सव की सुंदर झांकी प्रस्तुत की जाती है।

राम और सीता के बहुत सारे प्रसंग इस क्षेत्र में हैं, इसलिए यहाँ के साहित्यिक कृतियों में राम और सीता से संबंधित कथा गद्य और पद्य में मिल जाते हैं। यहाँ के प्रचलित गीतों में राम सीता के वनवास के प्रसंग गाये जाते हैं। ऐसी मान्यता है कि सीता के भाग्य और उसके दुर्भाग्य से जुड़े प्रसंग के लिए उसके पति राम ही ज़िम्मेदार हैं। राम मिथिला के विधि-विधान में भी शामिल हैं। यहाँ रामनवमी बहुत ही प्रमुखता के साथ मनाया जाता है। ऐसा लगता है कि रामनवमी से इतर, मर्यादा पुरुषोत्तम राम के साथ होली जैसे पर्व को मनाने की परम्परा भी मिथिला में ही है, क्योंकि होली के लोकगीत में परम्परागत रूप से राम की चर्चा मिलती है।

*प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व के शोधार्थी, मूर्तिविज्ञान विषय पर विशेष अध्ययन एवं शोधकार्य,

सम्प्रति- उत्तरी बिहार के पुरातत्व एवं इतिहास पर स्वतन्त्र रूप से अध्ययन करते हुए शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक क्रियाकलाप। बेगूसराय

'मिथिला में राम खेलथि होरी/ मिथिला में...।'

जिस तरह से राम दामाद होकर यहाँ के लोक जीवन में अपना एक स्थान बना चुके हैं, उसी तरह महादेव को भी मिथिला का दामाद के रूप में मान्यता मिली हुई है। कांवरिया बाबा बैद्यनाथ को मिथिला से पैदल यात्रा करते हुए तिलक चढ़ाते हैं। जनश्रुतियों में मिथिला को यह सौभाग्य प्राप्त है कि देवाधिदेव महादेव और भगवान श्रीराम यहां के दामाद हुए हैं। यहां के लोग गौरी को दाइ और सिया को धिया ही कहते हैं।

मिथिला का धर्म और दर्शन यहाँ के परम्परगत समाज से ही निकला है। यहाँ के समाज से ही प्राचीन भारत के आस्तिक दार्शनिक विचारधारा, नास्तिक दार्शनिक विचारधारा तथा मध्यकालीन शैव एवं वैष्णव सम्प्रदाय के तमाम दार्शनिक और विद्वान हुए। मिथिला प्रारम्भ से ही समन्वयवादी जीवन स्थापित करने की स्थिति में रहा है। राम वैष्णव सम्प्रदाय के प्रतिनिधि हैं तो शिव शैव सम्प्रदाय के। भारतीय समाज में जब कभी धार्मिक संक्रमण हुआ उससे मिथिला अछूता नहीं रहा। प्राचीन काल में आठवीं शताब्दी में आचार्य शंकर (शंकराचार्य) ने भारतीय सनातन परम्परा के विकास और हिंदू धर्म के प्रचार व प्रसार में योगदान दिया और मध्यकाल में स्वामी रामानन्दाचार्य ने भक्ति आंदोलन का सूत्रपात किया। भक्तिकाल में स्वामी रामानन्द को मध्यकालीन भक्ति आंदोलन का महान सन्त माना जाता है। उन्होंने रामभक्ति की धारा को समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुंचाया। उन्होंने उत्तर भारत में भक्ति मार्ग का प्रचार प्रसार किया। कहा जाता है कि उन्होंने समाज में रामभक्ति की धारा को निचले तबके तक पहुँचाते हुए तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों जैसे छूयाछूत, ऊंच-नीच और जात-पात का विरोध किया। इस तरह भारतीय धर्म, दर्शन, साहित्य और संस्कृति के विकास में वैष्णव एवं शैव भक्ति से संबद्ध वैचारिक क्रांति की भूमिका को आसानी से समझा जा सकता है।

आठवीं और नवीं शताब्दी तथा चौदहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी के बीच में जिस किसी तरह के धार्मिक मान्यताओं ने स्वरूप ग्रहण किया, मिथिला में उसके लक्षण साहित्यिक और पुरातात्विक प्रमाण के रूप में हमें मिलते हैं। आठवीं और नवीं शताब्दी में ब्राह्मण और बौद्ध धर्म के बीच समन्ववाद की बात हमें दिखाई देती है तो चौदहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी के बीच वैष्णव और शैव सम्प्रदाय के बीच समन्वय स्थापित करने की कोशिश की गयी है। हमारे पास दोनों कालखण्ड में हुए समन्ववाद से संबंधित स्रोत उपलब्ध हैं।

साहित्यिक कृतियों से इतर पुरातात्त्विक महत्त्व के पुरावशेषों में पाषाण प्रतिमाओं का विशेष महत्व है। कुछ दशक पहले तक मिथिला के संबंध में यह मान्यता थी कि मिथिला के क्षेत्र में पाषाण प्रतिमाओं की घोर कमी है लेकिन इस क्षेत्र से विजयकांत मिश्र[1], सत्यनारायण सत्यार्थी[2], सुशान्त कुमार[3] आदि लेखकों की पुस्तकों से इस मान्यता को विराम लगा है कि मिथिला में पाषाण प्रतिमाओं की घोर कमी है। इन पुस्तकों के प्रकाशन के दशकों पूर्व, 1936 में मिथिला मिहिर पत्रिका के विशेषांक 'मिथिलांक'[4] में रामनिरेषण मिश्र ने उन्नचास प्रसिद्ध तीर्थ स्थलों की चर्चा की। ये तीर्थस्थल प्रसिद्ध तीर्थ, दैवी तीर्थ, शिव तीर्थ एवं अन्य तीर्थ के रूप में शामिल किए गए थे।

हमने अपने अन्वेषण के दौरान उत्तरी बिहार के इलाके में सूर्य, गणेश, उमा महेश्वर, विष्णु, कार्तिकेय आदि देवी देवताओं की पाषाण प्रतिमा देखते हैं लेकिन राम से संबंधित पाषाण प्रतिमाओं का अभाव है। कौशल्या और दशरथ के पुत्र राम को विष्णु का सातवाँ अवतार माना गया है। वाल्मीकि-रामायण के अतिरिक्त भागवत-पुराण, अग्नि-पुराण, विष्णु

1. मिश्र विजयकान्त कृत दो पुस्तक, मिथिला आर्ट एन्ड आर्टिटेक्चर, मिथिला प्रकाशन, इलाहाबाद, 1978 एवं कल्चरल हैरिटेज ऑफ मिथिला, मिथिला प्रकाशन, इलाहाबाद, 1979
2. सत्यार्थी सत्यनारायण, दर्शनीय मिथिला नौ खण्ड, द्वितीय संस्करण, दरभंगा, मई 2003
3. कुमार सुशान्त, दरभंगा प्रक्षेत्र की पाषाण प्रतिमाएं, वाराणसी, 2016
4. राम निरेषण मिश्र का आलेख मिथिला मिहिर विशेषांक, 1936, पृ0-153-155

-पुराण, शिव-पुराण, स्कन्द-पुराण-जैसे प्राचीन शास्त्रीय विभिन्न ग्रन्थों में राम के जीवन से संबंधित आख्यान उपलब्ध हैं।

प्रतिमाओं से संबंधित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ अपराजितपृच्छा में राम के जीवन से संबंधित महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया गया है लेकिन इन ग्रन्थों में राम के प्रतिमा लक्षण उपलब्ध नहीं हैं। राम के प्रतिमा लक्षण का वर्णन रूपमण्डन, देवतामूर्तिप्रकरण, मानसोल्लास, पद्म संहिता, हयशीर्ष संहिता आदि ग्रन्थ में है। इस इलाके में राम की प्रतिमा पाषाण की जगह संगमरमर की मिलती है। उमा महेश्वर की दर्जनाधिक प्रतिमाओं को पाषाण प्रतिमा के रूप में देखा है लेकिन संगमरमर की नहीं। राम के साथ राम परिवार, जिसमें राम, लक्ष्मण, सीता और हनुमान की मूर्ति रहती है। मुझे ऐसा लगता है कि इस इलाके में राम परिवार की मूर्तियां मठ के मिलती है, जिस मठ का विकास तुलसीदास के बाद वैष्णव सम्प्रदाय के बढ़ते प्रभाव के कारण सम्भव हुआ।

शिव का साक्ष्य हमें कभी शिवलिंग के रूप में, कभी प्रतिमा के रूप में उमा महेश्वर, हरिहर आदि के रूप में स्वतन्त्र रूप से मिलती है, लेकिन राम की प्रतिमा हमें स्वतन्त्र रूप से शिव की तरह नहीं मिलती हैं। नवीं दसवीं शताब्दी में आकर अगस्त्य-संहिता में महादेव और पार्वती द्वारा राम के उपासना के संदर्भ में जानकारी मिलती है। बारहवीं शताब्दी तक आते आते राम की उपासना रामनवमी के रूप में मनाने की छिटफुट जानकारी होने लगती है और सतरहवीं शताब्दी में तुलसीदास के द्वारा रामचरितमानस की रचना के बाद राम घर-घर में पहुँच जाते हैं।

मिथिला में बहुदेववाद की परम्परा रही है। यह पंचदेव उपासक की भूमि रही है। मध्यकालीन मिथिला के साहित्य मेंशिव, दुर्गा, राधाकृष्ण आदि को सम्बोधित रचनाएं मिलती है। प्रारंभिक मध्यकाल और मध्यकाल में जब ब्राह्मण धर्म के भीतर वैष्णव सम्प्रदाय और शैव सम्प्रदाय के बीच समन्वय स्थापित हो रहा है तो पुरातात्विक स्रोतों में हरिहर की प्रतिमा हमें देखने को मिली है। इस तरह की में विष्णु और शिव का आधा आधा रूप बना हुआ है। इस तरह की प्रतिमा हमें राजनगर (मधुबनी) और काशी प्रसाद जायसवाल पुरातात्विक संग्रहालय, जी. डी कॉलेज, बेगूसराय में संरक्षित है। हरिहर की प्रतिमा के रूप में राम और शिव से जुड़े प्रमाण प्रतिमा के रूप में नहीं मिले हैं लेकिन शिवलिंग पर राम की आराधना से सम्बन्धित श्लोक मिले हैं। कपिलेश्वर स्थान (मधुबनी), गौरीशंकर (जमुथरि), गौरीशंकर (हाजीपुर), रामचौरा (हाजीपुर) आदि ऐसे कई जगह हैं जहाँ शिव और राम के बीच समन्वय स्थापित करने की कोशिश की जा सकती है।

कपिलेश्वर स्थान, मधुबनी में शिवलिंग पर राम-पद का चिह्न

कपिलेश्वर स्थान शिव की आराधना के लिये प्रसिद्ध है। कपिलेश्वर स्थान मधुबनी जिलान्तर्गत रहिका प्रखंड मुख्यालय में दरभंगा जयनगर मुख्य मार्ग पर अवस्थित है। जनश्रुति है कि यह स्थान महर्षि कर्दम एवं देवहुति के आत्मज कपिल ने कपिलेश्वर स्थान शिवलिंग की स्थापना की है। यही कपिल महान् तत्त्वज्ञानी सांख्य दर्शन के प्रणेता कपिलमुनि हुए। नागर शैली में निर्मित यह मन्दिर इस इलाके में ख्यातिप्राप्त है। इस परिसर में प्रवेश करने पर गर्भगृह से पहले काले पत्थर का एक चित्रित शिला है, इसमें लेख भी उत्कीर्ण है। यह लेख राम से संबंधित है। इस लेख के संबंध में भवनाथ झा ने बताया कि 'मिथिलाक्षर में ॐ रामाय नमः उत्कीर्ण है।'[5] कपिलेश्वर स्थान में राम की आराधना शैव और वैष्णव सम्प्रदाय के बीच तादात्म्य स्थापित करता है।

रामपद-उत्कीर्ण शिव-शिलापट्ट

5. झा भवनाथ से बातचीत के दौरान यह ज्ञात हुआ।

जमुथरि गाँव का गौरी-शंकर शिवलिंग

रामगायत्री वाला भाग

मधुबनी जिले के झंझारपुर प्रखंड मुख्यालय में जमुथरि नामक जगह पर गौरीशंकर स्थान है। इस स्थल पर शिवलिंग में अभिलेख उत्कीर्ण है। इस अभिलेख का पाठ धर्मायण पत्रिका पूर्व में प्रकाशित है। "यहाँ शिवलिंग में एक ओर पार्वती का एक मुख है। मुख के बायीं ओर राम गायत्री और दाहिनी ओर शिव-गायत्री मन्त्र तिरहुता लिपि में उत्कीर्ण है।...वर्तमान में यहाँ नवनिर्मित मन्दिर में इसी परिसर से प्राप्त एक शिवलिंग स्थापित कर दिया गया है, इसका लिंग वाला अंश खंडित है। वेदी स्तूपाकार है जो पूर्णतः तान्त्रिक सिद्धान्त पर निर्मित है। इसके नैर्ऋत्य कोण में भी राम लिखा हुआ है'।[6] गौरीशंकर स्थान के अभिलेखों में राम लिखा हुआ है, यह इस क्षेत्र में वैष्णव धर्मावलम्बी के साथ शैव धर्मावलम्बी के बीच समन्वयवादी परम्परा को दर्शाता है।

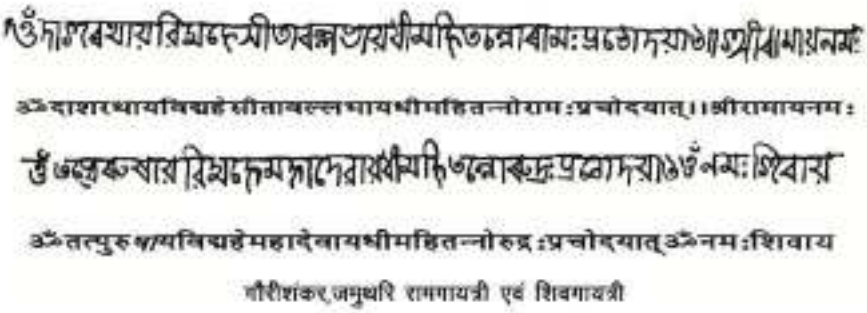

राम-गायत्री एवं शिव गायत्री एवं पाठ

गौरीशंकर, हाजीपुर में रामपद एवं पार्वती के कर्णफूल पर 'राम'

हाजीपुर में हेला बाजार में मस्जिद चौक के पास एक प्राचीन गौरीशंकर शिवलिंग स्थापित है, जिसमें अरघा पर रामपद का अंकन तथा उसी पदचिह्न के पास देवनागरी में "रामपद" उत्कीर्ण है। "श्रीविश्वनाथ सहाय" यानी विश्वनाथ महादेव मेरे ऊपर कृपा करें, यह भी देवनागरी में उत्कीर्ण है। यहाँ शिवलिंग से संलग्न गौरीमुख के दोनों कानों में जो कर्णफूल की आकृति का आभूषण है, उसमें एक कान पर 'रा' एवं दूसरे पर 'म' अक्षर उत्कीर्ण है। यह शिव तथा राम की उपासना के समन्वय का विशिष्ट उदाहरण है।

कपिलेश्वर स्थान और दोनों गौरीशंकर के ये तीनों अभिलेख एवं अंकन मिथिला के समाज एवं धर्म में राम के होने का एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण है। यह अभिलेखीय प्रमाण है, इस कारण इसकी ऐतिहासिकता पर संदेह नहीं किया जा सकता है। इन दोनों प्रमाण के आधार पर मिथिला में राम और शिव के समन्ववाद पर और अधिक कार्य किये जाने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है।

***

6. बिहार की गौरवमयी वैष्णव-धारा, झा भवनाथ, सम्पादकीय (आवरण कथा), धर्मायण अंक 75, माघ-चैत्र, 2064, जनवरी-मार्च, 2008 ई. पृष्ठ 20.

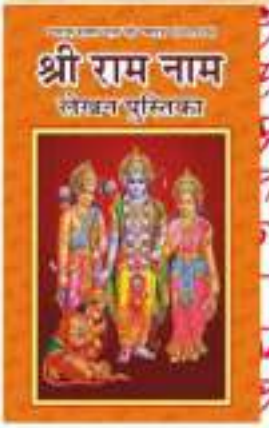

श्रीरामनामलेखन की विधि

श्री अंकुर पंकजकुमार जोशी

कलियुग में रामनाम-लेखन एक विशिष्ट यज्ञ माना गया है। इसके लिए अनेक प्रकार की पुस्तिकाएँ प्रकाशित की गयी हैं। महावीर मन्दिर के परिसर में भी अनेक श्रद्धालु साधना के रूप में इस 'लिखिता-जप' का अनुष्ठान करते हुए दिखाई देते हैं। इस रामनाम-लेखन की पारम्परिक विधि है, अनेक ग्रन्थों में तथा स्वतन्त्र रूप से भी इसका विधान किया गया है। समग्र भारत में इसकी सैकड़ों पाण्डुलिपियाँ भी मिलीं हैं। लेखक ने उन विधानों का सम्पादन किया है तथा स्वयं भी इसके साधक हैं। मेरे आग्रह पर उन्होंने इसकी सरल विधि यहाँ प्रस्तुत की है।

कलिकाल में श्री भगवन्नाम जप महा-महा कल्याणप्रद माना गया है। इस विपरीत समय में भी, महामहिमामय नाम, अपनी ऐश्वर्य में ज्यो का त्यों प्रतिष्ठित है!

वैसे तो भगवान् का नाम, भाव कुभाव जैसे भी लिया जाय, कल्याणप्रद ही है, किन्तु उस नाम का शीघ और प्रत्यक्ष आनंदरूप फल का अनुभव करना हो, तो नामजप में एकाग्रता अपेक्षित है। प्रायः साधकों की शिकायत रहती है, की जप के समय एकाग्रता नहीं रहती। अतः शास्त्रों ने कृपापूर्वक "लिखिता जप" का विधान किया है।

लिखिता जप का अर्थ है, लेखन पूर्वक जप। इस प्रक्रिया में हाथों से नाम का लेखन, जिह्वा से नाम का जप ,आँखों से नाम का दर्शन, मन से नाम का ध्यान यह सब बहुत ही सहज रूप में साथ-साथ ही हो जाते है और मन की एकाग्रता सहज ही हो जाती है। पाठक लिखिता जप अथवा मन्त्रलेखन करके स्वयं अनुभव करके देख लें, स्वयं अनुभव हो जाएगा इसमें संदेह नहीं है।

वैसे तो कई मन्त्र के लेखन का विधान प्राप्त होता है, किन्तु सबसे अधिक सुगम एवं प्रचारित श्रीरामनामलेखन है। पुराणप्रमाण से यह लोकप्रसिद्ध है कि श्रीगणेशजी रामनाम लिखकर तथा लिखित नामकी परिक्रम करके ही सभी पूज्यदेवों में अग्रगण्य हुए है।

बृहन्नारदीय पुराण का कहना है :

स्मरणात्कीर्तनाच्चैव श्रवणाल्लेखनादपि ।
दर्शनाद्धारणादेव रामनामाखिलेष्टदम्॥

रामनाम उसके स्मरण,कीर्तन,श्रवण,दर्शन,धारण और लेखन – किसी भी प्रकार से अखिल-इष्ट-प्रदायक है।

तन्त्रशास्त्रों में लिखिता जप अथवा मन्त्रलेखन को एक विशेष अनुष्ठान का रूप दिया गया है। वैसे तो किसी भी प्रकार लिखने से , स्मरण करने से नाममहिमा का अनुभव होगा ही, किन्तु यदि उसे शास्त्रानुसार विधिपूर्वक किया जाय तो एक विशेष आनंद और शीघ्र सफलता की प्राप्ति होती है।एक लक्ष बार श्रीरामनामका लेखन करने से एक पुरश्चरण पूर्ण होता है।

श्रीरामनाम का लेखन का आरम्भ शुभ समय देख कर करें। पहले दिन सर्वप्रथम नाम महिमा से ही अग्रपूज्य बने श्रीगणेशजी तथा अपने इष्टदेव श्रीसीतारामजी का पूजन कर लें। बाकी के दिनों में भूतशुद्धि कर, अपने हृदय में श्रीसीतारामजी का परिकर सहित ध्यान करें और मानसिक पूजन करे तो भी पर्याप्त है। श्रीरामनामलेखन के पूर्व प्रणव का उच्चारण करके लेखन प्रारम्भ करें। लेखन कार्य पूरा होने के बाद भी प्रणव का उच्चारण करें।

मन्त्र-लेखन के समय शुद्धासन का प्रयोग करें, जिस पर भोजन आदि अन्य सांसारिक कृत्य न होते हों। शरीर शुद्ध रखें, शुद्ध भोजन करें, और हृदय से भगवान की शरणागति स्वीकार करें। सम्भव हो तो अष्टगंध की श्याही से, दाड़िम की कलम से, भोजपत्र अथवा शन के कागद पर लेखन करें। यह सम्भव न हो, तो लाल स्याही की पेन से सामान्य कागद पर भी मन्त्रलेखन हो सकता है। सारी विधि में मुख्यता मन्त्र लेखन की है, अतः प्रतिकूलता अथवा शुद्ध अष्टगंध आदि द्रव्य की दुर्लभता का बहाना कर मन्त्रलेखन ही न करना अपने आपको धोखा देना है। जितने नियमों का पालन हो सके, वह करके भी नाम लेखन अवश्य करें।

लेखन का दशांश हवन, उसका दशांश गोदुग्ध से तर्पण, उसका दशांश जल से मार्जन, और उसका दशांश ब्रह्मभोजन कराने से अनुष्ठान पूर्ण होता है। विशेष फल के लिए, गेहूं के आटे की गोली बनाकर, अपने लिखित नाम के पत्र टुकड़ों को उनमे बंध कर, नाभि भर जल में जाकर स्थित होवें। श्रीरामानन्य चित्त होकर एक-एक करके सभी गोलियों को जल में पधरा देवें।

ऊपर दिया हुआ विधान रुद्रयामल तन्त्र से उद्धृत और अनेक महात्माओं द्वारा अनुभूत है। यह सिद्ध प्रयोग है। जो अनुष्ठान रूप में न करके भी, थोड़ी मात्रा में नामलेखन करना चाहें, वे भी यथासम्भव नियमों का पालन करके नाम लेखन अवश्य करे, कलियुग में केवल नाम ही आधार है!

कलियुग केवल नाम आधारा!

रामनाम महाराज की जय!

***

पाठकों से निवेदन

धर्मायण का ज्येष्ठ, 2078 का अंक **जल-संरक्षण विशेषांक** के रूप में प्रस्तावित है। ज्येष्ठ मास गंगावतरण का मास है। वस्तुतः गंगा हमारी संस्कृति में न केवल नदियों का बल्कि सरोवर, ह्रद, कूप, आदि सभी जलाशयों का पर्याय है। शिव मन्दिर के समक्ष के जलाशय को शिवगंगा कहते हैं। हमारे विभिन्न ग्रन्थों में जल को देवता माना गया है, तथा इसके अधिपति वरुण देव कहे गये हैं। 'धर्मायण' के इस अंक के लिए बौद्ध एवं जैन सहित सनातन परम्परा में जल संरक्षण हेतु जो उपाय कहे गये हैं, उन पर विद्वत्तापूर्ण आलेख **18 मई, 2021 ई.** आमन्त्रित हैं।

रामायण के प्रसिद्ध पात्र श्रवण कुमार के वास्तविक नाम की खोज

यज्ञदत्त-वध

डा. काशीनाथ मिश्र*

महान् मातृ-पितृभक्त श्रवण कुमार वाल्मीकि-रामायण के चर्चित पात्र हैं, लेकिन यह प्रश्न उठता रहा है कि श्रवण उनके पिता का नाम था और श्रवणस्य कुमारः पुत्रः श्रवण कुमारः इस व्युत्पत्ति से यह उनकी संज्ञा नहीं होकर विशेषण है। तो फिर, उनका नाम क्या है? यह प्रश्न कथावाचकों और श्रद्धालुओं के बीच उठता रहा है। इसका उत्तर मिलता है वाल्मीकि-रामायण के पूर्वोत्तर पाठ से। इतना ही नहीं, वाल्मीकि-रामायण के इस अंश का स्वतन्त्र सम्पादन भी यज्ञदत्तवध के नाम से हो चुका है। अंग्रेजी के विद्वान् लेखक ने गूगल अनुवादक की सहायता से कठिन परिश्रम कर इस विशिष्ट पुस्तक के सम्बन्ध में जो जानकारी दी है, वह न केवल उपर्युक्त समस्या का समाधान करता है बल्कि हमें रोमाञ्चित कर देता है।

सन् 1809 ई. में PAR AL CHÉZY नामक एक फ्रेंच विद्वान् को अमरकोष की पाण्डुलिपि अन्वेषण के क्रम में कलकत्ता में वाल्मीकि-रामायण के अयोध्याकाण्ड का एक अंश स्वतन्त्र पाण्डुलिपि के रूप में 'यज्ञदत्तवध' के नाम से उपलब्ध हुई थी। उन्होंने दो वर्षों तक इस अंश का अध्ययन किया तथा इसकी पूर्णता को देखकर फ्रेंच में इसका पद्यानुवाद किया। साथ ही प्रत्येक श्लोक का रोमन लिप्यन्तरण, तथा फ्रेंच में व्याख्या कर इस 14 फार्मा की पुस्तक के रूप में 224 पृष्ठों में सन् 1926 ई. में पेरिस से प्रकाशित किया। इसमें उन्होंने इस अंश का बंगला लिपि में पाठ भी दिया, जिसकी प्रतिलिपि 1813 ई. में करायी गयी थी। (चि. सं. 1)

यद्यपि वाल्मीकि-रामायण का यह अंश अयोध्याकाण्ड के गोरेशियो संस्करण में सर्ग संख्या 65 एवं 66 के रूप में भी उपलब्ध है। यही अंश गीताप्रेस के संस्करण में सर्ग संख्या 63 एवं 64 में पाठभेद के साथ प्रकाशित है, किन्तु 'यज्ञदत्तवध' के रूप में पृथक् रूप से कुल 107 श्लोकों की पाण्डुलिपि मिलना एक महत्त्वपूर्ण बात थी। साथ ही, इस अंश का यज्ञदत्तवध के रूप में प्रसारित करना, इस बात का संकेत करता था कि रामायण में उक्त श्रवण कुमार का वास्तविक नाम यज्ञदत्त था।

YAJÑADATTABADA,

LA MORT D'YADJNADATTA,

ÉPISODE EXTRAIT DU RAMÂYANA,

Par A. L. CHEZY,

A PARIS,

इसके संपादक पर अल चेजी ने स्वीकार किया है कि इस

*उच्चतर माध्यमिक शिक्षक, 'विद्या भारती' अखिल भारतीय शिक्षण संस्थान, सरस्वती विद्या मंदिर, शास्त्रीनगर, मुंगेर।

पुस्तक की बहुत कम प्रतियाँ छपवायी गयी थी, जिसे उन्होंने अपने मित्रों में बाँट दी थी। इस प्रकार भारतीय साहित्य पर यह एक विरल ग्रन्थ है। आज के डिजिटल क्रान्ति के युग में सैकड़ों वर्षों से बंद पड़े पुस्तकालयों एवं दराजों में लाल कपड़े में बंधे पुस्तक भी गूगल के माध्यम से सर्वसुलभ हो रहा है।

फ्रेन्च भाषा में लिखित भूमिका से स्पष्ट होता है कि यह रामायण पाठ से ही अनूदित है, लेकिन कई रूपों में वर्तमान में गीता प्रेस से प्रकाशित रामायण से अन्तर दृष्टिगोचर होता है। इस अंश में श्रवण का नाम यज्ञदत्त दिया गया है। पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना है कि क्या किसी पाठ में यह नाम उल्लिखित है? इस पुस्तक का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

इस यज्ञदत्तवध में दो स्थलों पर श्रवण कुमार के लिए यज्ञदत्त नाम का प्रयोग हुआ है। जब दशरथ श्रवण कुमार की मृत्यु का समाचार लेकर वृद्ध माता-पिता तक पहुँचते हैं तो अन्धे पिता आहट सुनकर पुत्र के आने के अनुमान कर कहते हैं कि हे यज्ञदत्त, क्या तुम देर तक पानी में खेलकूद करते रहे? तुम्हारी माता प्यासी है और मैं भी वैसा ही हूँ।

यज्ञदत्त चिरं तात सलिले क्रीडितं त्वया।
उत्कण्ठितेयं माता ते तथाहमपि पुत्रक।।48।।

आगे दशरथ के मुख से पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर माता धरती पर औंधे मुँह गिर कर बेटे से कहती है-

ननु ते यज्ञदत्ताहं प्राणेभ्योऽपि प्रिया विभो।
स कथं दीर्घमध्वानं प्रस्थितो मां न भाषसे।।70।।

इस पुस्तक की प्रस्तावना में इस कथा की भूमिका इस प्रकार लिखी गयी है- प्राचीन काल में दशरथ नाम के एक राजा थे जिनका विशाल साम्राज्य था और उनकी राजधानी अयोध्या थी। कैकेयी, सुमित्रा एवं कौशल्या उनकी तीन पत्नियाँ थी। प्रथम कैकई से एक पुत्र भरत था, द्वितीय सुमित्र से दो जुड़वा पुत्र लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न था एवं तृतीय कौशल्या से अत्यन्त प्रिय राम था, जिनको उन्होंने युवराज घोषित किया। राम का जन्म चमत्कारिक था। भारतीय मतानुसार विष्णु स्वयं राम के रूप में अवतार ग्रहण किये थे। ब्रह्मा एवं अन्य देवताओं ने भगवान विष्णु से अवतार ग्रहण करने के लिए प्रार्थना की थी और भगवान ने दशरथ के पुत्र के रूप में मानव शरीर ग्रहण करने का निश्चय किया। यह संदर्शानुकुल है कि रावण द्वारा सीता का हरण उनके सामान्य मोह के कारण नहीं है, बल्कि यह इश्वरेच्छाधीन है। भाग्य द्वारा यह प्रेरित हुआ है। रामायण में छोटी घटनाओं का संबंध बड़ी घटनाओं से है।

महाराज दशरथ गुरु वशिष्ठ के मार्गदर्शन में धर्माचरण करते हुए सभी दिशाओं में समृद्धि को प्राप्त कर रहे थे। एक दिन भगवत्प्रेरणा से महर्षि विश्वामित्र राजा दशरथ के समक्ष उपस्थित हुए एवं राम द्वारा दो दुरात्माओं का वध करने की याचना की। राजा दशरथ ऋषि की आज्ञा को न चाहते हुए भी अस्वीकार नहीं कर पाये। यद्यपि ऋषि ने शिक्षा देने की भी बात की। राम बहुत समय तक विश्वामित्र के साथ रहकर अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा ग्रहण किये एवं दो असुर सुवाहु एवं मारीच को मारे। तत्पश्चात ऋषि ने राम को दशरथ के ही मित्र स्वतन्त्र राजा जनक के दरबार में ले गये। राजा जनक को सीता नाम की दिव्य सुन्दरी पुत्री थी। सीता के विवाह हेतु जनक को एक स्वयंवर का आयोजन किया था। राम सीता के सौन्दर्य को

देखकर मुग्ध हो गये थे। स्वयंवर में सीता योग्य वर के लिए दिव्य धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाने की शर्त थी। विश्वामित्र ने राम को दूर देशों से आये हुए स्वयंवर में राजा-महाराजाओं के बीच प्रतियोगी के रूप में स्थापित किये। सबसे अन्त में राम उस दिव्य धनुष को एक ही हाथ से उठाकर प्रत्यंचा चढ़ाने लगे कि भयानक ध्वनि के साथ वह धनुष बीच से ही टूट गया, जबकि उनसे पूर्व कोई भी उस धनुष को हिला भी नहीं पाये थे। राम का विवाह सीता से राजकीय सम्मान के साथ सम्पन्न हुआ। सीता को बड़े ही सम्मान के साथ लक्ष्मी के रूप में अयोध्या में स्वागत किया गया, लेकिन कौन जानता था, स्वर्ण एवं रत्नों से सुसज्जित सीता की मुस्कान आंसू में बदल जाएगी एवं सम्पूर्ण परिवार शोक सन्तप्त हो जाएगा।

एक रानी कैकेयी गुप्त रूप में राम से ईर्ष्या करती थी। राजा दशरथ वाणप्रस्थ अवस्था प्राप्त करने के कारण युवराज राम का राज्याभिषेक करने का निर्णय लिया। जहाँ सम्पूर्ण अयोध्या में उत्सव जैसा माहौल था, रानी कैकई पूर्व में कभी अपने पति की जीवन रक्षा करने हेतु कृतज्ञता स्वरूप प्राप्त दो वरदान का वचन पूर्ण करने का आग्रह किया। राजा दशरथ से सपथ पूर्वक वचन ले लेने के बाद दोनों वरदान के रूप में राम को चौदह वर्षो का वनवास एवं भरत हेतु युवराज का पद माँग की। इस निर्दयतापूर्ण याचना से राजा शोक सन्तप्त हो गये। बहुत समझाने एवं निवेदन करने के बाद भी कैकई नहीं मानी। अपने वचन को पूर्ण करनेवाले कुल में जन्मे अपने वचन से राजा विमुख नहीं हो सकते थे। अपने पिता की अवस्था को जानकर, राम तत्काल राजकीय वेष आभूषणादि त्यागकर मुनि वेष धारण कर वन गमन को उधत हुए। उसी रूप में सीता एवं लक्ष्मण भी जो राम से अलग नहीं रह सकते थे, राम के साथ दण्डक वन की ओर प्रस्थान किये।

अपने दुर्भाग्य पर रोते हुए दशरथ का क्या हुआ इसका वर्णन आदि कवि एवं द्रष्टा वाल्मीकि अपने काव्य में करते हैं कि शोकाकुल दशरथ अतीत में हुए एक घटना कौशल्या को सुनाते हैं। एक दिन शाम के समय शिकार से वापस आने के क्रम में राजा दशरथ को सरयू नदी के तट पर कुछ जानवरों के नदी की ओर आने की आहट दूर से ही सुनाई दी। प्रतीत हुआ कि एक हाथी अपनी सूढ से पानी पी रहा हो। उन्होंने उस आवाज को संधान कर वाण चलाया, लेकिन दर्दनाक कराह सुनकर स्तब्ध रह गया। शिकार के समीप पहुंचा तो पाया कि वह जो एक सन्यासी बालक था जिसके सीने में वाण लगा था । वह कहरहा था कि उसने किसी का क्या बिगाड़ा था, वो तो अपने वृद्ध अन्धे माता-पिता के लिये पवित्र नदी का जल लेने आया था। को अकेले वर्षो से उनकी सेवा करते रहे हैं। आह! अब उनकी सेवा कौन करेगा। दशरथ अत्यन्त पीड़ित बालक को घायल नदी किनारे देख पश्चताप की अग्नि में जलने लगे। बालक ने कहा 'हे क्षत्रिय' मैंने आपका क्या बिगाड़ा था कि आपने मुझे मृत्यु दी। हे निर्दयी! उस ओर कुटिया में मेरे अंधे माता पिता मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं, उन्हें जल पहुँचा दो, लेकिन इससे पूर्व मेरे सीने से बाण निकाल दो। यह बहुत पीड़ा दे रहा है। आप अपने भय को शान्त करो। आपने ब्रह्महत्या नहीं किया है। मेरे पिता प्रतिष्ठित ब्राह्मण हैं, लेकिन माता शूद्र है।

राजा दशरथ पात्र में जल भरकर उस कुटिया में जाकर देखते हैं कि उनके अन्धे माता-पिता उस पुत्र के विलम्ब होने से दुखी थी। पद चाप की आहट सुनकर वृद्ध ने कहा- कितना देर लग गयी। हे यज्ञदत्त! भूल गये क्या? खुश हो जाओ। हमसे भूल हुई है तो माफ करो। तु ही हमारी प्राण हो। तू ही हमारी शक्ति हो। हमारा जीवन तुम पर ही आश्रित है। तुम एक शब्द बोलते क्यों नहीं।

हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! मैं आपका पुत्र नहीं, मैं दशरथ एक क्षत्रीय हूँ। मैं अक्षम्य अपराध हेतु माफी मांगने आया हूँ। जल भरने के आवाज से जंगली हाथी होने के भ्रम में उस पर अमोध वाण चला दिया। पीड़ा से क्लान्त बालक के सीने से मैंने बाण निकाल दिया। उसका जीवन बचाने का प्रयास किया, लेकिन वह स्वर्ग सिधार गया। दशरथ के शब्दों को सुनकर दोनों अंधे माता-पिता बेहोश हो गये। होश सँभलने पर

शेष पृष्ठ 58 पर

डा. लक्ष्मीकान्त विमल*

मैथिल महाकवि रूपनाथ उपाध्याय प्रणीत

श्रीरामविजय महाकाव्य

रामकथा तो वह भागीरथी है, जिसमें स्नान कर सभी लोग पवित्र होना चाहते हैं। इसी क्रम में मिथिला के महाकवि रूपनाथ उपाध्याय कृत श्रीरामविजय महाकाव्य समादरणीय है। रामाराज्याभिषेक तक की कथा को कुल नौ सर्गों में निबद्ध कर उन्होंने वहीं पर समाप्त कर दिया है। आगे सीता-निर्वासन आदि की कथा उन्होंने नहीं लिखी है। यह मिथिला में भी पण्डितों के बीच रामकथा के स्वरूप की परम्परा का संकेत करता है।

भारतीय ज्ञानपरम्परा में मिथिला का विशेष स्थान है। विदेहमुक्त राजा जनक, वैदिक सिद्धान्त को पुनः प्रतिष्ठापक कुमारिलभट्ट, षट्दर्शन पर प्रमुख टीकाकार वाचस्पतिमिश्र और नव्यन्याय का उत्सभूमि मिथिला ही है। विगत शताब्दी में संस्कृत मैथिल विद्वानों ने मिथिला क्षेत्र के बाहर अपनी विद्या और सुलेखनी से सुरभारती की उपासना में संलग्न रहा है। यद्यपि मिथिला में इन विद्वानों की चर्चा अतिन्यून है अथवा चर्चा है ही नहीं। ऐसे महामनीषी भक्त महाकवि रूपनाथ उपाध्याय हैं।

आप की एकमात्र उपलब्ध कृति श्रीरामविजयमहाकाव्य है। श्रीमान् रूपनाथ उपाध्याय का जीवनवृतान्त श्रीरामविजय महाकाव्य के प्रस्तावना मे थोड़ा उपलब्ध है उसी को यहाँ उद्घाटित किया जा रहा है। महाकवि तर्कशास्त्र, व्याकरणशास्त्र एवं मीमांसा के उद्भट विद्वान् थे। इनका समय 18 वें वैक्रम संवत् के अन्तिम भाग में अथवा ख्रीष्टाब्द 1800 ई. के आदि में माना जाता है। इनके दूसरे पुत्र का नाम श्रीमान् लक्ष्मीदत्त उपाध्याय है। लक्ष्मीदत्त के पुत्र का नाम चन्द्रदत्त है। श्रीमान् चन्द्रदत्त ने अपने पिता की प्रशस्ति में लिखा है कि लक्ष्मीदत्त की मृत्यु वैक्रम संवत् 1930 ई. में अठासी वर्ष की अवस्था में हुआ था। इस से यह सिद्ध होता है रूपनाथ उपाध्याय का समय अपने पुत्र लक्ष्मीदत्त से 30 वर्ष पूर्व अर्थात् 1800 शताब्दी के आदि में रहा होगा।

अष्टाशीतिसमे वयःपरिणते माहिष्मती-पत्तने
श्रीरामेति महुर्वदन्नुदजहद्देहं जले नार्मदे॥
भूमि-ग्राम-नवेन्दुभिः परिमिते संवत्सरे वैक्रमे
माघे मासि कुजे रवौ मकरगे पक्षे वलक्षेतरे॥
पञ्चम्यामरुणोदये स तु तनुं त्यक्त्वा बुधः श्रीयुतो
लक्ष्मीदत्त उदार-कीर्तिरगमद्विष्णोः पदं निर्भयम्॥[1]

वर्तमान समय में माहिष्मती मध्यप्रदेश के रेवा नदी के तट पर विराजमान है। रूपनाथ उपाध्याय के तीन पुत्र थे यज्ञदत्त, लक्ष्मीदत्त और वासुदेवोपाध्याय हैं। इनमें लक्ष्मीदत्त भी

1. श्रीरामविजयमहाकाव्यम्, रूपनाथ उपाध्याय, गोपीनाथ कविराज (संपा.), पं. गणपतिलाल झा (संपा.) 1932ई., सरस्वती भवन पुस्तकालय, बनारस, प्रस्तावना पृ. 1

*मूलतः भारतीय दर्शन के परम्परागत अध्येता, वरिष्ठ शोधाध्येता, श्री शंकर शिक्षायतन, नई दिल्ली।

प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होंने 'तीर्थप्रबन्ध' नामक काव्य की रचना की है। चन्द्रदत्त ने अपने पिता लक्ष्मीदत्त की प्रशस्ति में रूपनाथ उपाध्याय का उल्लेख मूलपुरुष के रूप में किया है।

आसीन्मैथिल-मण्डलीषु विलसद्विद्यावतामग्रणीः।
माहिष्मत्यधिलब्धदेवमहिमः श्रीरूपनाथः कृती॥[2]

श्रीरामविजय महाकाव्य में नौ सर्ग हैं। पहले सर्ग में भगवान् श्रीराम के जन्म से बाल्यलीला का वर्णन है। कवि ने इस सर्ग का नाम 'गर्भाधान' रखा है एवं श्लोक संख्या 66 हैं। दूसरे सर्ग का नाम 'धनुर्भङ्ग' है एवं श्लोक की संख्या 105 हैं। तीसरे सर्ग का नाम 'श्रीरामपरिणय' एवं श्लोक संख्या 73 है। चौथे सर्ग का नाम 'चित्रकूटगमन' एवं श्लोक संख्या 121 है। पाँचवें सर्ग का नाम 'भरतप्रत्यागमन' एवं श्लोक संख्या 62 है। छठे सर्ग का नाम 'खरादिवध' एवं 64 श्लोक हैं। सातवें सर्ग का नाम 'बालिवध' एवं श्लोक की संख्या 102 है। आठवें का नाम 'सीतादर्शन' एवं श्लोक संख्या 66 है। नौवें सर्ग का नाम 'श्रीरामाधिरूढसिंहासन' है एवं श्लोक संख्या 146 हैं।

इस प्रकार इस महाकाव्य में कुल 805 श्लोक हैं। इस महाकाव्य का प्रकाशन 1932 ई. में वाराणसी के सरस्वती भवन ग्रन्थमाला के अन्तर्गत वाणीविलास प्रेस से प्रकाशित किया गया था। इसके संपादक प्रख्यात विद्वान् श्रीमान् गोपीनाथ कविराज का भी नाम मुखपृष्ठ पर अंकित है, संशोधक के रूप में पण्डित गणपति लाल झा एवं संस्कृत भाषा में लिखित प्रस्तावना के लेखक पण्डित नारायण शास्त्री ख्रिस्ते हैं। सुकवि ने प्रत्येक सर्ग के अन्त में 'श्यङ्के' पद का प्रयोग किया है। राजा दशरथ आखेट हेतु जंगल में जाते हैं, वहाँ मुनि द्वारा शापित होकर पुनः नगर आते हैं। यहाँ से कथा प्रारम्भ होती है एवं रावण के वध के बाद भगवान् श्रीराम राजसिंहासन पर आरूढ़ होते हैं।

संस्कृत जगत् में अनेक विद्वानों ने भगवान् श्रीराम को आधार बना कर महाकाव्य, चम्पू और नाटक का प्रणयन किया है। रामकथा तो एक ही है परन्तु भिन्न भिन्न कवियों की दृष्टि और पदचयन और विषय उपस्थापन की नवीनता यही काव्य की नवीनता है।

सुकवि ने भगवान् श्रीराम के जन्म का समय, नक्षत्र और ग्रह आदि का निरूपण सुन्दर पद्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। यद्यपि यह विषय वाल्मीकीय रामायण में मिलता है। परन्तु कवि का पद चयन एवं विषयों की प्रस्तुति ही अपूर्वार्थ का द्योतक है। प्रायः भारतीय जनमानस भगवान् के इस जन्मकालिक निरूपण से परिचित है, तथापि यहाँ कवि की उद्भावना अत्यन्त ही प्रसन्नता प्रदायक है।

चैत्रिकेऽथ धवले पुनर्वसौ शोभनेऽधिनवमि स्त्रिया ग्रहैः।
पञ्चभिर्न रविगैः श्रितोच्चगैर्ज्येष्ठया प्रसुषुवे सुतो दिने॥[3]

भगवान् श्री राम का जन्म चैत्र मास के शुक्लपक्ष में पुनर्वसु नक्षत्र में नवमी तिथि को दिन में हुआ था। उस दिन पाँच ग्रह एक ही उच्च स्थान पर थे जिसमें सूर्य ग्रह नहीं था। क्योंकि सूर्य के होने मात्र से अन्य ग्रह अस्त हो जाते हैं। इस दृष्टि से कवि ने 'न रविगैः' पद से स्पष्ट किया है। जैसे अव्ययीभाव समास में 'अधिहरि' प्रयोग बनता है, वैसे ही कवि ने 'अधिनवमि' का प्रयोग किया है। जो भाषा अध्ययन के लिए उपादेय है। इसी सर्ग में भगवान् श्रीराम के विष्णु स्वरूप का वर्णन किया गया है।

पद्मपत्र-नयनश्चतुर्भुजो जानुलम्बि-सुभुजोल्लसद्वपुः।
शङ्ख-चक्र-कमलं गदां दधत्कौस्तुभेन वनमालया लसन्॥[4]

2. तदेव, प्रस्तावना पृ. 2 3. तदेव, 2.1, पृ. 15 4. तदेव, 2.2, पृ. 15

भगवान् श्रीराम का नेत्र कमल के समान हैं, चार भुजाधारी हैं, घुटने तक हाथ उनका लम्बा है, जिससे वे सुशोभित हो रहे हैं, हाथ में शङ्ख, चक्र, कमल का फूल और गदा विराजमान है, गले में कौस्तुभ मणि एवं ऋतुकालिक फूलों के माला से सुशोभित है।

तृतीय सर्ग के आदि में भगवान् श्रीराम जब जनकपुर में शिवधनुष का भंग करते हैं, तब वहाँ भगवान् परशुराम का आगमन होता है। भगवान् श्रीराम में एवं भगवान् परशुराम के मध्य जो संवाद होता है, उसकी प्रस्तुति सुकवि ने सरल वाक्य से प्रस्तुत किया है।

पूजामनादृत्य नृपस्य तस्य क्रुधा व्यवोचद् भृगुवंशकेतुः।
कोऽयं धनुस्त्रोटितवान् शिवस्य वदाशु मह्यं तममोघवीर्यम्॥[5]

भगवान् परशुराम ने राजा जनक के द्वारा पूजा को स्वीकार नहीं किया, भगवान् परशुराम ने क्रोधपूर्वक कहा कि किसने भगवान् शिव के धनुष को तोड़ा है, शीघ्र ही बताओ वह कौन अमोघ शक्तिवाला है।

तूष्णीं भवन्तं जनकं निरीक्ष्य विहस्य रामो जिजगाद रामम्।
क्षन्तव्यमेवेति कृतिर्ममेयं मुने! महात्मा खलु शान्तवृत्तिः॥[6]

भगवान् श्रीराम देखते हैं कि राजा जनक चुपचाप देख रहे हैं उस स्थिति में भगवान् श्रीराम ने हँस कर भगवान् परशुराम से कहा कि क्षमा कीजिए, धनुष तोड़ने का कार्य मेरा ही है। हे मुनि! महात्मा को शान्तिवृत्ति ही शोभा देता है। इस सुललित पद्य में कर्तृबोधक प्रथमान्त राम पद भगवान् राम के लिए है, जबकि कर्मबोधक द्वितीयान्त पद भगवान् परशुराम के लिए आया है। पद्य का अन्तिम चरण सुन्दर सूक्ति का द्योतक है।

नवम सर्ग में भगवान् श्रीराम महावीर हनूमान् को संबोधित कर कहते हैं कि हनुमान् ने जो कार्य किया है, वह कार्य कोई अन्य नहीं कर सकता है। समुद्र को लाँघना कठिन था एवं लङ्कापुरी को अग्नि में समर्पित कर दिया। यहाँ भगवान् श्रीराम उद्गार को सुकवि ने सुललित शब्दों में अभिव्यक्त किया है।

हनूमता यत्कृतमद्यकार्यं करिष्यते नैव कदाचिदन्यैः।
अलङ्घि सिन्धुर्यदलङ्घ्यपारः पुरी च लङ्काऽनलसात्कृता यत्॥[7]

यहाँ अनलसात् शब्द भस्मसात् आत्मसात् की तरह प्रयुक्त है। तद्धितप्रत्यय का उदाहरण है।

इसी सर्ग में जब अंगद राक्षसराज लङ्काधिपति रावण के पास जाते हैं और वहाँ रावण और अंगद का संवाद अत्यन्त सरल शब्द में सुकवि ने प्रस्तुत किया है। सहृदय समालोचक को यह पद्य सहसा ही आकृष्ट करने योग्य है। जब रावण अंगद से पूछता है कि तुम कहाँ से आये हो, किस के दूत हो तुम और तुम कौन हो।

अथाङ्गदोऽगादधिलङ्कमायतां सभां समुत्प्लुत्य सरावणादिकाम्।
विलोक्य रक्षःपतिना स भाषितः कुतश्च कस्येति च कस्त्वमागतः॥[8]

अंगद ने रावण के द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर बड़े ही मधुर शब्दों में कहा है कि मैं अंगद समुद्र तट से जनक की पुत्री सीता के पति का हितैषी दूत हूँ और वालि का मैं बेटा हूँ। इसपर रावण अंगद से कहता है कि अरे! मूर्ख जिन्होंने तुम्हारे पिता को मारा है, उसके तुम दूत हो।

5. तदेव, 3.11, पृ. 27 6. तदेव, 3.12, पृ. 27 7. तदेव, 9.2, पृ. 90 8. तदेव, 9. 32, पृ. 96

समुद्र-तीराज्जनकात्मजापतेर्हितैषिदूतस्तनयोऽस्मि बालिनः।
अरेर्विमूढोऽसि पितुर्विघातिनोऽभवश्चरस्तस्य न जीवघातुकः॥[9]

रावण ने अंगद से कहा कि राजाओं के देवता इन्द्र से, वरुण से, कुबेर से, काल से, वायु से, आग से और देवताओं से भय नहीं हुआ तो भला इस वानर से और मनुष्य से मुझे क्या डर होगा। यहाँ सुकवि की पदशय्या अत्यन्त ही सरल है। प्रायः संस्कृत न जानने वाले जिज्ञासु पाठक इस सुललित पद्य का अर्थ समझ जायेंगे।

न मे सुरेशादपि पाशिनो न मे न मे कुबेरादपि मे न कालतः।
न वायुतो मे न च वह्नितो भयं न चामरेभ्यः किमु वानरात् नरात्॥[10]

जब भगवान् श्रीराम रावण को मार कर जगन्माता जानकी को लङ्का में पुष्पक विमान पर बैठा कर अपनी नगरी अयोध्या ले जा रहे हैं। उसी क्रम में माता सीता को भगवान् ने समुद्र पर जो पुल बना था उसका दर्शन करा रहे हैं। यहाँ भगवान् की उदात्त भावना और अहैतुकी प्रेम का दिग्दर्शन सहज ही मिलता है।

रामादेशादुत्तरस्यां दिशायाम् आकाशस्थं पुष्पकं तज्जगाम।
प्राह स्मालं रामचन्द्रः प्रियां तां पश्याब्धिं त्वं यत्र सेतुर्निबद्धः॥[11]

इसी क्रम में भगवान् श्रीराम जगज्जननी सीता को पम्पा नगरी का दर्शन कराते हैं, यहाँ आते आते भगवान् श्रीराम को रात हो गया है। अत एव सुकवि रूपनाथ उपाध्याय कहते हैं कि बिजली के प्रकाश में पम्पा नगरी को दिखाया है, यहीं पर शबरी भगवान् श्रीराम को भक्तिपूर्वक बदरी प्रदान की थी, पञ्चवटी के समीप में गोदावरी नदी नदी प्रसन्नता को प्रदान करने वाली है।

एषा पम्पा सुभ्रु-शम्पा-प्रकाशे यत्र प्रदत्तं बादरं मे शबर्या।
गोदा चैषा मोददा मोदमाना यस्यामासीः पञ्चवट्याः समीपे॥[12]

चतुर्थ सर्ग में भगवान् श्रीराम के विषय में सुकवि का सहज पद्य प्रस्फुटित होता है कि भगवान् श्रीराम मुनि का वेष धारण कर लिया है, घर होने पर भी पर्वत के कन्दराओं में निवास करते हैं, जंगली वस्तु को ही भोजन करते हैं। उनका चरण कमल ध्वजा और वज्र के चिह्न से चिह्नित है।

श्रीरामो मुनिवर-वेषधारकोऽपि ग्रावान्ते कृतसदनोऽपि वन्यभोक्ता।
कुर्वाणो मुनिचरितं तथापि लक्ष्म्या संसेवे ध्वज-कुलिशादि-लक्ष्मपादः॥[13]

इस प्रकार, इस श्रीरामविजय महाकाव्य में भक्तिरस का ही प्राधान्य है। महाकाव्योचित प्रकृति का वर्णन, सन्ध्या का वर्णन, नदी का वर्णन एवं सुललित सुभाषित भी सहज शब्दों में प्रस्तुत किया गया है।

***

9. तदेव, 9. 33, पृ. 96 10. तदेव, 9. 35, पृ. 97 11. तदेव, 9.118, पृ. 113
12. तदेव,9.121, पृ. 114. 13. तदेव, 4.121, पृ. 46

श्री महेश प्रसाद पाठक*

सांस्कृतिक समन्वय के युगप्रतीक- श्रीराम

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम की कथा वाल्मीकि-रामायण सुदूर उत्तर से लेकर सुदूर दक्षिण पढा और क्षेत्रीय लिपियों में लिपिबद्ध कि गया है। यह इस बात का ठोस प्रमाण है कि श्रीराम बृहत्तर भारत की मर्यादा के प्रतीक रहे हैं। यह उनके जीवन की समन्वयात्मक क्रिया-कलापों का परिणाम है। लेखक ने यहाँ राम-कथा में समन्वय के सिद्धान्तों और प्रयोग का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है।

भक्तजनरञ्जन, परममंगलमय, भक्तिशाखा के सागर श्रीराम के बारे में कुछ कहने से उत्तम है, कि सकलमनोकामना सिद्ध इन्हीं के नाम का एकबार प्रेमपूर्वक उच्चारण कर लिया जाय। प्राचीन काल के राजाओं में इन्हें सर्वमान्य एवं आदर्श मर्यादाचार प्रतिमा की मूर्ति के रूप में प्रतिष्ठित कर 'मर्यादापुरुषोत्तम' नाम से अभिहित किया है। ये मात्र एक ऐतिहासिक पुरुष ही नहीं, बल्कि एक आदर्शपुत्र, पति, भ्राता, नृप आदि के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। श्रीराम विष्णु के अवतार कहे गये हैं। कहा गया है-

वनजौ वनजौ खर्वः त्रिरामी सकृपोऽकृपः।
अवतारा दशैवैते कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्॥[1]

अर्थात् वनजौ=(जल में होने वाले दो अवतार)- मत्स्य और कच्छप, वनजौ= (जंगल में रहने वाले दो अवतार)-वराह और नृसिंह, खर्व= (ठिगने अवतार)-वामन, त्रिरामी=(तीन राम वाले)- परशुराम, दाशरथी राम और बलराम, सकृपः= (कृपायुक्त अवतार)-बुद्ध, अकृपः (कृपाहीन अवतार)-कल्कि और श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् हैं। अवतारों की संख्या में कहीं दस (दशावतारचरित), तो कहीं चौबीस (भक्तमाल), कहीं बाईस (श्रीमद्भा.) अवतारों के वर्णन देखने को मिलते हैं। इस संख्या वैषम्य को दूर करने के लिये श्रीमद्भागवत[2] में कहा गया है- "जैसे अगाध सरोवर से हजारों छोटे-छोटे जलस्रोत निकला करते हैं, उसी प्रकार सत्त्वनिधि भगवान् के असंख्य अवतार हुआ करते हैं।"

यद्यपि ब्रह्म चिन्मय, अद्वितीय, प्राकृत, अवयवरहित और पञ्चभौतिक शरीर से रहित है, तथापि भक्तजनों के अभीष्ट कल्याण के लिये वह चिन्मय देह को प्रकट करता है। वह भक्तों के स्नेहवश निराकार ब्रह्म ही नराकार होकर अवतार लिया करता है। भगवान् श्रीराम जो राजा दशरथ के पुत्र थे, इनके अतिरिक्त वैदिक साहित्य में 'राम' नामधारी पुरुषों के नाम इस प्रकार देखे जा सकते हैं-

1. दशावतारगणना के इस पारम्परिक श्लोक का मूल अज्ञात है। डा. बलदेव उपाध्याय ने **पुराण-विमर्श** (पृ. 175) में इसे उद्धृत किया है।
2. **श्रीमद्भागवत-महापुराण**, 1/3/26- "अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः। यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥"

* "गार्ग्यपुरम्" श्रीसाईं मन्दिर के पास, बरगण्डा, पो- जिला-गिरिडीह, (815301), झारखण्ड, Email: pathakmahesh098@gmail.com मो. नं. 9934348196

1. **राम भार्गवेय-** ये श्यामपर्ण कुल से सम्बन्ध रखने वाले पौरोहितीय परिवार के सदस्य हैं एवं इन्हें जनमेजय का समकालीन कहा गया है।[3]
2. **राम औपतस्विनी-** उपतस्विन के वंशज एक आचार्य का नाम। ये याज्ञवल्क्य के समकालीन थे।[4]
3. **राम क्रातुजातेय-** एक वैदिक आचार्य और क्रतुजात के वंशज।[5]

अथर्ववेदीय 'श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद्' में कहा गया है-

ॐ चिन्मयेऽस्मिन्महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ।
रघोः कुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः॥1॥
स राम इति लोकेषु विद्वद्भिः प्रकटीकृतः।
राक्षसा येन मरणं यान्ति स्वोद्रेकतोऽथवा॥2॥
रामनाम भुवि ख्यातमभिरामेण वा पुनः।
राक्षसान्मर्त्यरूपेण राहुर्मनसिजं यथा॥3॥
प्रभाहीनांस्तथा कृत्वा राज्यार्हाणां महीभृताम्।
धर्ममार्गं चरित्रेण ज्ञानमार्गं च नामतः॥4॥
तथा ध्यानेन वैराग्यमैश्वर्यं स्वस्य पूजनात्।
तथा रात्यस्य रामाख्या भुवि स्यादथ तत्त्वतः॥5॥
रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥6॥[6]

महाविष्णु श्रीहरि जब रघुकुल में दशरथजी के यहाँ अवतीर्ण हुए, उस समय उनका नाम 'राम' हुआ। जैसे प्राकृत वट के महान वृक्ष का कारण एक छोटे से बीज में स्थित रहता है, उसी प्रकार यह चराचर जगत् रामबीज में स्थित है। इस उपनिषद् में राम की व्युत्पत्ति इस प्रकार मिलती है- जो महीतल पर स्थित होकर भक्तजनों के सम्पूर्ण मनोरथ को पूर्ण करते हों और राजा के रूप में सुशोभित हों-वे ही 'राम' है। 'राति राजते वा महीस्थितः सन् इति रामः'

3 ऐतरेय ब्राह्मण-7/27/34- "विश्वंतरो ह सौषद्यनः श्यापर्णान्परिचक्षाणो विश्यापर्णं यज्ञमाजहे तद्धानुबुध्य श्यापर्णास्तं यज्ञमाजग्मुस्ते ह तदन्तर्वेद्यासां चक्रिरे तान्ह दृष्ट्वोवाच पापस्य वा इमे कर्मणः कर्तार आसतेऽपूतायै वाचो वदितारो यच्छयापर्णा इमानुत्थापयतेमे मेऽन्तर्वेदि मासिषतेति तथेति तानुत्थापयां चक्रुस्ते होत्थाप्यमाना रुरुविरे ये तेभ्यो भूतवीरेभ्योऽसितमृगाः कश्यपानां सोमपीथमभिजिग्युः पारिक्षितस्य जनमेजयस्य विकश्यपे यज्ञे तैस्ते तत्र वीरवन्त आसुः कः स्वित्सोऽस्मा-कोऽस्ति वीरो य इमं सोमपीथमभिजेष्यतीत्ययमहमस्मि वो वीर इति होवाच रामो भार्गवेयो रामो हास भार्गवेयोऽनूचानः श्यापर्णीयस्तेषां होत्तिष्ठतामुवाचापि नु राजन्नित्थविदं वेदेरुत्थापयन्तीति यस्त्वं कथं वेत्थ ब्रह्मबन्धविति 27 ॥7.27॥"

4 शतपथ ब्राह्मण- 4/6/1/7- "सार्थवादमनामिकायामवबद्धस्य हिरण्यस्यावघ्राणं विधाय औपतपस्विनो रामस्य मतेनोच्छ्वसन्नंशुग्रहो होतव्य इति विधानम्,"

5 जैमिनीय उप० 2/40/1- ...नगरी जानश्रुतेयः काण्ड्वियशाङ्गाय शाट्यक्त अयनय आत्रेयाय शङ्गशाट्यायनिरात्रेयो रामाय क्रातुजातेयाय वैयाघ्रपद्याय रामः क्रातुजातेयो वैयाघ्रपद्यः 2/40

6 श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद्' 1/1-6

इसके अनुसार राति राजते का प्रथमाक्षर 'रा' तथा महीस्थितः का प्रथमाक्षर 'म' को लेकर 'राम' बनता है। राक्षस जिनके द्वारा मरण को प्राप्त करते हैं- वे 'राम' हैं। सबके मन को रमाने वाले 'राम' हैं। जैसे राहु मनसिज (चन्द्रमा) को हतप्रभ कर देता है, उसी प्रकार जो राक्षसों को मनुष्यरूप से प्रभाहीन कर देते हैं- वे 'राम' है। जिस नित्यानन्दस्वरुप चिन्मय ब्रह्म में योगीजन रमण किया करते हैं, वे परब्रह्म परमात्मा ही 'राम' पद के द्वारा प्रतिपादित होते हैं। राम में 'र' अग्नि (कृशानु), 'आ' में सूर्य (भानु) तथा 'म' में चन्द्रमा (हिमकर) तत्त्वरूप में विद्यमान रहते हैं, यह नाम ब्रह्मा, विष्णु और शिव का समन्वय है। **ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि।**[7] इसलिये यह नाम (निर्गुण) ब्रह्म और सगुण (राम) दोनों से बड़ा है।

विकासक्रम के युगावतार

विकासवादी परम्परा के अमूल्य संकेत जैसे सभ्यता और संस्कृति की धारणाओं, परम्पराओं, आकांक्षाओं के जीवंत प्रमाण इसकाल में देखे जा सकते हैं। श्रीराम विकासक्रम के युगावतार के रूप में भी मान्य हैं। इसकाल में लोग अपने अधिकार के लिये वर्ग-संघर्ष भी किया करते थे, इसके पुष्ट प्रमाण आर्य एवं आर्येतर जातियों के बीच होने वाले संघर्ष हैं। इसीकाल में जहाँ परशुराम के प्रतीक परशु एवं तीर-धनुष का प्रचलन तो था, वहीं श्रीराम ने भी इस तीर-धनुष को ही अपना एकमात्र प्रतीक बनाया। तभी तो श्रीराम के एकनिष्ठ गोस्वामीजी श्रीकृष्ण की प्रतिमा को देखकर कहते हैं-

कहा कहीं छवि आपकी, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष-बाण लो हाथ॥

तभी मुरलीमनोहर श्रीकृष्ण अपनी छवि को परिवर्तित कर रामछवि में धनुष-बाण लिये हुए खड़े होकर मुस्कुरा रहे थे और तुलसीदासजी इसे हृदयंगम कर आनन्दित हो रहे थे। तात्पर्य है कि श्रीराम को धनुर्वेद की शिक्षा विश्वामित्र से प्राप्त हुई, सीता स्वयंवर के धनुषयज्ञ में अपनी महत्ता स्थापित की, विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करते हुए राम और लक्ष्मण ने ताड़का का वध धनुष-बाण से किया, कंचनमृग आदि को धनुष-बाण से ही मारा, बालि की मृत्यु श्रीराम के बाणों से ही हुई थी, सात ताल के वृक्षों को एक ही बाण से धाराशायी किया, राम-रावण के युद्ध में सर्वाधिक प्रयोग धनुष-बाणों का ही हुआ था। श्रीराम के बारे में कहा गया है- 'श्रीराम कभी दो बाण नहीं चलाते, एक ही बाण में शत्रुओं को ढेर कर देते हैं।' धनुष-बाण में ही शक्तियों का आरोपण कर रौद्रास्त्र[8] वायव्यास्त्र[9], ऐन्द्रास्त्र[10] आग्नेयास्त्र[11] गारुड़ास्त्र[12] गान्धर्वास्त्र[13] आदि जैसे विध्वंसक अस्त्र चलाये जाते थे। देवराज इन्द्र के पुत्र जयन्त ने कौवे का वेश धारण कर जब मातासीता पर कुदृष्टि डाली थी, जिससे श्रीराम ने क्रोधित होकर वहीं पड़े हुए एक

7 रामचरितमानस, बालकाण्ड- 25

8 वाल्मीकि-रामायण, मूलमात्रम्, गीताप्रेस, गोरखपुर, पाँचवाँ संस्करण, सं. 2058 (2002ई.), युद्धकाण्ड- 67/116- "अथ दाशरथी रामो रौद्रमस्त्रं प्रयोजयन्।" पृ 547.

9 वाल्मीकि-रामायण, तदेव, 67/155- "वायव्यमादाय ततोऽपरास्त्रं रामः प्रचिक्षेप निशाचराय।" पृ. 549.

10 वाल्मीकि-रामायण, तदेव, 67/159- "ऐन्द्रास्त्रयुक्तेन जघान रामो बाणेन जाम्बूनदचित्रितेना" पृ. 549.

11 वाल्मीकि-रामायण, तदेव, 79/38- "पावकास्त्रं ततो रामः संदधे तु शरासनो" पृ. 570.

12 वाल्मीकि-रामायण, तदेव, 102/24- "अस्त्रं गारुत्मतं घोरं प्रादुश्चक्रे भयावहम्।" पृ. 599.

13 वाल्मीकि-रामायण, तदेव, 93/26- "मोहिताः परमास्त्रेण गान्धर्वेण महात्मना।" पृ. 588.

तिनके को अभिमन्त्रित कर बाण-संधान कर **'सींक धनुष सायक संधाना'** जयन्त पर चलाया था, जिससे वह श्रीराम के शरणागत हो गया था। धनुष-बाण के अतिरिक्त अन्य युद्ध उपकरणों का भी प्रयोग होने लगा था। लोगों में धर्म एवं दर्शन के अतिरिक्त इसकाल में कृषिकर्म की प्रधानता थी, जिसका उदाहरण राजा जनक के द्वारा हल चलाया जाना भी है, जिससे माता सीता प्रकट हुई।

अथ मे कृषत: क्षेत्रं लांगलादुत्थिता तत:।
क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता॥
भूतलादुत्त्थिता सा तु व्यवर्द्धत ममात्मजा।
वीर्यशुक्लेति मे कन्या स्थापितेयमयोनिजा॥[14]

कृषि एवं पशुपालन दोनों ही परस्पर पूरक धन्धे थे। गौ-सम्पदा सबों के पास बहुतायत में थी- **'वाजिवारणसम्पूर्णां गोभिरुष्ट्रै:'**[15] साररूप से रामराज्य को अकाल से मुक्त **'दुर्भिक्षभयवर्जित:'** कहा गया है। श्रीराम के काल में आवागमन के साधनों में रथचालन, नौकागमन, पुष्पकविमान का भी वर्णन मिलता है। यह थल, जल और वायु मार्ग को अपने अधिकार में लेने का भी संकेत करता है। श्रीराम के लंकागमन के समय समुद्रसेतु का निर्माण आज भी उच्चस्तरीय तकनीकी को चुनौती देता है, जिसकी छवि अन्तरिक्ष से भी निहारी जा सकती है। बाल्मीकीय रामायण में विभिन्न प्रकार के धातुओं (सुवर्ण, रजत, काँसा, पीतल, ताम्बा, टीन, सीसा आदि) एवं उनके प्रयोगों के भी वर्णन मिलते हैं। कुशल-कारीगरी एवं कला-विकास की दृष्टिकोण से भी उत्तरोत्तर विकसित सभ्यता और संस्कृति के लक्षण देखे जाने लगे थे। संक्षिप्ततः रामराज की सुव्यवस्था, सुशासन, सदाचारादि आज भी 'रामराज्य' की परिकल्पना के रूप में देखी जाती है।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक समन्वय

भारतीय संस्कृति में राम और कृष्ण इस प्रकार रचे-बसे हैं जैसे- सूर्य और चन्द्र। जहाँ श्रीराम समन्वयात्मक रूप में स्थापित हैं, वहीं श्रीकृष्ण विश्लेषणात्मक रस के अगाध सागर कहे जाते हैं। जहाँ श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम के रूप में जाने जाते हैं, वहीं श्रीकृष्ण लीलापुरुषोत्तम कहे गये हैं। श्रीराम के काल में आर्यों का प्रभुत्व गंगा-यमुना के पास वाले मैदानी इलाकों में फैला हुआ था, जबकि दक्षिणी भाग में घनघोर वन थे, जहाँ अनार्यों का निवास था। अपनी प्रभुता के आधार पर दोनों ही अपने साम्राज्य का विस्तार चाहते थे। विन्ध्यपर्वत के दक्षिणी छोर पर रहने वाले कुछ अनार्यों ने आर्यों के प्रभुत्व को स्वीकार भी किया था। लेकिन लंका प्रायद्वीप की कुछ जातियाँ, जिनके विचार आर्यों से मेल नहीं खाती थी; इन जातियों को आर्यों ने राक्षस की संज्ञा दी। यह नाम बर्बर, असभ्य आदि नामों से भी जाने जाते हैं। ये जातियाँ ऋषियों, मुनियों, ब्राह्मणों के चिरशत्रु के रूप में चित्रित किये जाते हैं। पूर्व महाभारतकालीन भारत में इन बर्बर राक्षसों का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है। ये अपनी भोगेच्छा, कामलिप्सा, दुष्टता, निर्लज्जता एवं अमर्यादित आचरण आदि जैसे अमानवीय कृत्यों के कारण कुख्यात मानी जाती थी। श्रीराम ने इन्हीं के विरुद्ध जो अभियान चलाया था, वह राम-रावण युद्ध के नाम से जाता है। रावण आदि के मृत्योपरान्त अर्थात् राम-रावण युद्ध की

14 वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 66/13-14, पृ. 97.
15 वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 5/13, पृ. 47

परिसमाप्ति के बाद श्रीराम ने लंका को जीता अवश्य था, किन्तु इन्होंने रावण के भाई विभीषण को लंका का राज्य वैदिक रीति से सौंपकर लंकाधिपति भी बनाया था। युद्ध के उपरान्त दोनों पक्ष के सैनिकों ने आत्मीयता एवं सौहार्द का परिचय देते हुए एक दूसरे से आलिंगन भी दिया था।

एक दूसरा उदाहरण राक्षसों के बाद आता है- वानरों का। इन्हें भी दक्षिण भारत में अनार्य कहा गया है, किन्तु इन्होंने आर्यों की संस्कृति को मात्र अपनाया ही नहीं बल्कि हरसम्भव सहयोग भी किया। जिन्हें वानर कहा गया है; वह दरअसल में वनचर जातियां हैं, जो विन्ध्यमाला पर्वत के दक्षिणी भाग में निवास करती थी। इन वानरों की राज्य व्यवस्था में राजा, मन्त्र, सेना, परिषद् आदि हुआ करती थी। श्रीराम ने इन्हें अपना सखा बनाया तथा इनके साथ मिलकर अपने अभियान को भी छेड़ा। इन वानरों में हनुमान, वाली, सुग्रीव, अंगद, नल-नील आदि का नाम प्रमुखता से आता है। इनमें नील जैसे तकनीक-कुशल वानर भी थे, जिनके द्वारा समुद्रसेतु का निर्माण किया गया था। वालि तो किन्किन्धा का राजा ही था। जिसने अपने भाई सुग्रीव से वैर करके आपस में युद्ध करने के क्रम में श्रीराम के हाथों मुक्ति मिली थी। अंततः सुग्रीव को किष्किन्धा का राजसिंहासन श्रीराम ने ही दिलवाया था।

हनुमानजी के बारे में इतना ही संक्षेप में कहा जा सकता है कि ये वानर (वनचर या वनवासी) जातियों में सर्वोत्तमरत्न थे; इनमें बल, बुद्धि, पराक्रम, शूरता, विद्या, शास्त्र-ज्ञान, उदारता, तेज, क्षमा, धैर्य, विनय आदि जैसे उत्तम गुणों का अद्भुत एवं अनुकरणीय सम्मिश्रण था। साहित्यिक दृष्टिकोण से इन वानरों के लिये वनगोचर, वनचारी, वनवासी कहना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। वानरों को प्लवंग कहा गया है- जो दौड़ने, उछलने, कूदने की क्षमता का संकेतक है। आर्य इन्हें कपि या शाखामृग कहकर संबोधित किया करते थे। तभी तो हनुमानजी अपना परिचय देते हुए कहते है-

शाखामृगस्य शाखायाः शाखां गन्तु पराक्रमः।[16]

उपर्युक्त वर्णित राक्षसों एवं वानरों के अतिरिक्त एक अन्य जाति थी- 'निषाद'। जो कोसल-राज्य और गंगा के तट के बीच के क्षेत्र-शृंगवेरपुर जिनकी राजधानी थी- में निवास किया करती थी। निषादों के राजा का नाम गुह था। इन्हें श्रीराम का सखा कहा गया है- **'यत्र रामसखा वीरो गुहो', 'आत्मसम सखा', 'भर्ता चैव सखा चैव रामो दाशरथिर्मम'**। ये धनुष-बाण के सञ्चालन में भी निपुण हुआ करते थे। जब भरतजी अपनी सेना सहित श्रीराम को अयोध्या लौटा ले जाने के लिये चित्रकूट जा रहे थे, तब सभी निषाद अनिष्ट की आशंका से श्रीराम की रक्षा हेतु तत्पर दिखे थे।[17] निषाद नदी तट पर निवास करने के कारण स्वभावतः नौका बनाने और चलने में निपुण थे। इन्हें लोगों का यथोचित सम्मान करना भी आता था। भरत के लिये निषादराज ने मिश्री, फल और मधु आदि भेंट सामग्री के रूप में प्रस्तुत किये थे। इसप्रकार इन संक्षिप्त प्रकरणों में श्रीराम ने निषाद-जाति ने सहर्ष मित्रता कर इन्हें अपना अभिन्न बनाकर जाति समन्वय का उदाहरण प्रस्तुत किया।

रामायण में एक अन्य घुमन्तू या पर्यटनशील जातियों का भी वर्णन मिलता है- गृध्रों या सुपर्णों का। एक प्रकरण

16 हनुमन्नाटकम्, हनुमद्विरचितम्, दामोदरमिश्रेण सम्यक्क्रमेण संदर्भितम्, दीपिका व्याख्या सहित, मोहनदास (व्याख्याकार), संवत् 1966 (1909ई.) खेमराज श्रीकृष्णदास, मुंबई, 6/44, पृ. 96

17 वाल्मीकि रामायण, उपरिवत्, अयोध्याकाण्ड, 84/5-6, "सम्पन्नां श्रियमन्विच्छन्....गङ्गानूपेत्र तिष्ठत।" पृ. 201.

में श्रीराम ने जब एक विशालकाय गृध्र को देखा, तब प्रभु को लगा की कोई भयानक राक्षस हैं। तभी उस पक्षी (जटायु) ने अपने मधुर स्वर में कहा- **'वत्स मां विद्धि वयस्य पितुरात्मनः।'**[18] 'बेटा! तुम मुझे अपने पिता का मित्र समझो।' यह सुनकर श्रीराम ने गृध्र का आदर किया। ये गृध्रजातियाँ भारत के पश्चिमीतट के समीपवर्ती पर्वत श्रेणियों में निवास किया करती थी। गृध्र जातियों में दो नाम प्रमुखता से लिये जाते है- मुखिया सम्पाति और छोटे भाई जटायु का। ये दोनों विनता के पुत्र अरुण से उत्पन्न हुए थे। पक्षिराज ने ही यह सूचना श्रीराम को दी थी कि रावण ने मातासीता का हरण कर दक्षिण-दिशा की ओर गया है। बलशाली जटायु ने लंकाधिपति रावण से सीतामाता को छुड़ाने के क्रम में अपने प्राण को भी समर्पित कर दिया था। पहले तो एक पक्षी के द्वारा किसी नारी-सम्मान में किये गये प्राणोत्सर्ग का इससे श्रेष्ठ उदाहरण अन्यत्र देखने को नहीं मिलता है, दूसरा यह कि भगवान् श्रीराम ने स्वयं ही अपने पिता के मित्र पक्षिराज की चिता सजाकर, इनका दाह-संस्कार कर, यथोचित पिण्डदान कर, गोदावरी ने जलाञ्जलि देकर सद्गति दी। सम्पाति का वर्णन उस समय आता है, जब सभी वानर-दल सीतान्वेषण में असफल होकर बैठा था; तभी सम्पाति ने अपना परिचय देते हुए मातासीता के हरण की भी सूचना दी। साथ ही यह सुनकर की जटायु की मृत्यु हो चुकी है- सम्पाति ने अपने भाई के प्रति श्रद्धा अर्पित करते हुए जलाञ्जलि देकर स्नान भी किया।[19] इस प्रकार यह स्पष्ट दीखता है कि गृध्र-जातियों ने भी आर्यों की ही भाँति धार्मिक आचार गृहीत कर दशरथनन्दन श्रीराम के कार्य में अपना सहयोग दिया।

एक अन्य पात्र है- शबरी। शबरी पम्पा-सरोवर के आसपास मतङ्ग-वन में रहने वाली एक शबर जाति की स्त्री-तपस्विनी है। कुछ विद्वानों का कहना है कि आधुनिक समय में शबरों का प्रतिनिधित्व करने वाली यह जाति मध्यप्रदेश की पहाड़ियों में निवास किया करती है। शबरी जाति से वर्णबाह्य होने पर भी परमात्म के तत्त्वज्ञान का नित्यज्ञान रखने वाली स्त्री थी। यह जाति भी पूर्णतया आर्यों के सांस्कृतिक प्रभाव में आने का सूचक देती है। क्योंकि शबरी श्रीराम दोनों भाइयों को आश्रम में आया देख पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय सामग्रियों से विधिवत् सत्कार कर सन्तष्ट किया।[20]

धार्मिक समन्वय

वैष्णव शाक्त समन्वय-त्रिदेवों के रूप में ब्रह्मा, विष्णु और महेश की कल्पना की गयी है, जिनका काम सृजक, पालक और संहारक माना गया है। इन्हीं में से विष्णु और शिव को मानने वाले क्रमशः वैष्णव और शैव कहलाये। तत्सम्बन्धित देवों को आदर्श मानकर दोनों सम्प्रदायों ने अलग-अलग रास्तों का चयन भी किया। जैसे सभी सरिताओं को अन्ततः समुद्र में मिलना ही पड़ता है, उसीप्रकार इन्हें भी एक स्थली पर क्यों नहीं मिलना चाहिये! जब देवताओं में आपस में कोई भिन्नता नहीं, तो भक्तों में क्यों हो ! लोक-धर्म की सम्यक स्थापना के लिये दोनों के बीच समन्वय होना आवश्यक है। रामचरितमानस में इस मतभेद का कुशलतापूर्वक निवारण किया गया है। इसमें राम और शिव को परस्पर एक दूसरे का भक्त बतलाकर दोनों के बीच अद्भुत साम्य स्थापित करने का प्रयास किया गया

18 वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड, 14/3- पृ. 247.

19 वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, 60/1, "ततः कृतोदकं स्नातं तं गृध्रं हरियूथपाः। उपविष्टा गिरौ रम्ये परिवार्य समन्ततः॥", पृ. 374

20 वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड, 74/7, "पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादाद्यथाविधि। तामुवाद ततो रामः श्रमणीं धर्मसंस्थिताम्॥" पृ. 305.

है। इसे देखें- भगवान् शंकर ने कहा-

'सोउ मम इष्ट देव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनिधीरा॥'[21]

यहाँ भगवान् शिव को रघुबीर (श्रीराम) का अनन्य भक्त कहा है, वहीं श्रीराम ने कहा है-

सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा॥
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥

* * *

संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥[22]

'जो शिव से द्रोह रखता है और मेरा भक्त कहलाता है, वह मनुष्य सपने में भी नहीं मुझे पा सकता है। शंकर के विमुख होकर मेरी भक्त करने वाला नरकगामी, मुर्ख और अल्पबुद्धि है। जिन्हें शंकर प्रिय हैं परन्तु मेरे द्रोही हैं एवं जो शिव के द्रोही हैं और मेरे दास बनना चाहते हैं, वे मनुष्य कल्पकाल तक घोर नरक में निवास करते हैं।' यहाँ श्रीराम शिव के उपासक के रूप में चित्रित हैं। श्रीराम ने दक्षिण समुद्र तट पर (रामेश्वरम् में) भगवान् शिव के लिंग को स्थापित कर पूजन-आराधन भी की थी। वहीं श्रीराम ने 'आदित्यहृदयस्तोत्र' का पाठ कर सूर्यदेव को प्रसन्न कर युद्धारम्भ किया था। हमें श्रीराम के तात्त्विक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, आचारगत विशेषताओं के व्यापक पहलुओं के साथ-साथ एवं इनके समस्त मानवीय मूल्यों को भी पहचानना होगा। हमें श्रीराम के तात्त्विक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, आचारगत विशेषताओं के व्यापक पहलुओं के साथ-साथ एवं इनके समस्त मानवीय मूल्यों को भी पहचानना होगा।

शाक्त और वैष्णव समन्वय – इन दोनों के बीच समन्वयात्मक चर्चा भी देखने को मिलती है। सीताजी मातापार्वती की स्तुति के रूप में कहतीं है-

नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाउ बेदु नहिं जाना॥
भव भव विभव पराभव कारिनि। बिस्व विमोहनि स्वबस बिहारिनी॥[23]

'आपके आदि, मध्य और अन्त का कोई पता नहीं। आपके असीम प्रभाव को वेद भी नहीं जान सकते। आप संसार को उत्पन्न, पालन और संहार करने वाली हैं। विश्व की विमोहित करने वाली और अपनी इच्छानुसार विहार करने वाली हैं।' सीतोपनिषद् में मातासीता को ही मूलप्रकृति माना गया है। तुलसीदासजी ने भी श्रीरामचरितमानस के आरम्भ में सीताजी की स्तुति ब्रह्मरूप में करते हुए कहते हैं-

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणींम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥[24]

'उत्पत्ति, स्थिति एवं संहार करने वाली, क्लेशों का नाश करने वाली, सम्पूर्ण कल्याणों को करने वाली श्रीरामचन्द्र की प्रियतमा श्रीसीताजी को नमस्कार करता हूँ।' जब श्रीराम तापस वेश में आगे-आगे चल रहे थे और

21. रामचरितमानस, बालकाण्ड-50
22. तदेव, लंकाकाण्ड -2
23. रामचरितमानस, बालकाण्ड -235
24. रामचरितमानस, बालकाण्ड -5

भ्राता लक्ष्मण पीछे तथा इन दोनों के बीच माता सीता उसी प्रकार सुशोभित थी, जिस प्रकार ब्रह्म जीव के बीच में माया।

आगे रामू लखनु बने पाछें। तापस बेष बिराजत काछें॥
उभय बीच सिय सोहति कैसें। ब्रह्म जीव बिच माया जैसे॥[25]

इस प्रकार वैष्णव **'वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमिशं हरिम्'**, शैव और शाक्त **'भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ'** के समन्वय दृष्टिकोण के अतिरिक्त गणपति **'वाणीविनायकौ'** एवं सूर्य की स्तुति भी 'आदित्यहृदयस्तोत्र' के रूप में देखी जा सकती है। ध्यातव्य है कि समन्वयात्मक दृष्टिकोण मात्र उपदेशात्मक नहीं बल्कि कार्यात्मक भी होने चाहिये। श्रीराम इसके सर्वोत्तम उदाहरण हैं। हमें श्रीराम के तात्त्विक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, आचारगत विशेषताओं के व्यापक पहलुओं के साथ-साथ एवं इनके समस्त मानवीय मूल्यों को भी पहचानना होगा। अब यह प्रश्न उठता है कि मात्र 'श्रीराम को' मानने से विश्व में शान्ति और सद्भावना का जागरण होगा कि 'श्रीराम की' को मानने से। मेरी समझ में जिह्वा पर अनवरत राम का नाम हो और हाथों से भी निरन्तर विश्व कल्याणार्थ पुरुषार्थ के कार्य होते रहें, तभी हमारा जीवन सार्थक कहलायेगा। अगर कोई भगवान् की बात भी नहीं माने, तो मूर्ख दुर्योधन का दृष्टान्त स्मरण कर लेना चाहिये।

***

25 रामचरितमानस, बालकाण्ड -123

यज्ञदत्त-वध का शेषांश- पृष्ठ संख्या 46 का शेषांश

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा- 'हमें अपने पुत्र के पास ले चलो उसे हम स्पर्श करना चाहते हैं।' कौशल्या से दशरथ कहते हैं कि वे दोनों को उस मृत पड़े बालक के पास ले गये, जहाँ वे देर तक रोते हुए स्पर्श किया। काँपते होठों से माता ने कहा- 'हे यज्ञदत्त! तुम तो अपने प्राण से भी ज्यादा हमें प्यार करते थे। क्या एक शब्द भी नहीं बोलेगे।' पिता ने कहा- 'क्या तुम पहचानोगे नहीं, ये तुम्हारी माता है। अब हम भी तुम्हारे पास आते हैं।' इस प्रकार, विलाप करते हुए वे दोनों भी परलोक सिधार गये।

रानी कौसल्या को यह कथा सुनाते हुए राजा दशरथ ने कहा कि उसी ब्राह्म शाप से मैं आज ग्रस्त हूँ। राम का वियोग उपस्थित होने पर देवदूत मुझे चलने में शीघ्रता करने के लिए कह रहे हैं। इतना कहकर राजा दशरथ ने भी प्राण त्याग दिया। इस अंश की कथा यहीं पर सम्पन्न होती है। इसका महत्त्व यह है कि इसमें मृतक पुत्र का नाम 'यज्ञदत्त' आया है, तथा प्राचीन काल में रामायण के इस अंश का लेखन पृथक् रूप से होता रहा है।

***

हनुमान् विरचित हनुमन्नाटक की

रामकथा

(अंक संख्या 104 से आगे)

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

यह हमारा सौभाग्य रहा है कि देश के अप्रतिम विद्वान् आचार्य सीताराम चतुर्वेदी हमारे यहाँ अतिथिदेव के रूप में करीब ढाई वर्ष रहे और हमारे आग्रह पर उन्होंने समग्र वाल्मीकि रामायण का हिन्दी अनुवाद अपने जीवन के अन्तिम दशक (80 से 85 वर्ष की उम्र) में किया वे 88 वर्ष की आयु में दिवंगत हुए। उन्होंने अपने बहुत-सारे ग्रन्थ महावीर मन्दिर प्रकाशन को प्रकाशनार्थ सौंप गये। उनकी कालजयी कृति रामायण-कथा हमने उनके जीवन-काल में ही छापी थी। उसी ग्रन्थ से अध्यात्म-रामायण की कथा हम क्रमशः प्रकाशित कर रहे हैं।

- प्रधान सम्पादक

जब लंकाके भवनकी अटारी पर बैठा हुआ रावण रामकी सेनाको देखने लग रहा था तभी मन्दोदरीने आकर रावणको बहुत समझाया कि रामसे वैर मत मोल लो। पर रावण किसकी सुननेवाला था ! उसने शुक और सारण नामके दो दूत रामकी सेनाकी थाह लेने पठा भेजे। रावण के मन्त्री विरूपाक्ष और महोदरने भी रावणको बहुत समझाया पर उन सबकी नीतिभरी बातोंका भी रावणपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मन्दोदरीने तो यहांतक आकर कह दिया कि बताओ, सीता क्या मुझसे भी अधिक सुन्दर है ? फिर भी रावण टससे मस न हुआ।

तब रावणने माया-जालसे सीताको वशमें करनेका निश्चय किया। उसने राम और लक्ष्मणके कटे और रुधिरसे सने सिर सीताके सामने ला दिखाए जिन्हें देखते ही सीता तो हाय हाय कर उठीं और प्राण त्याग करनेको तैयार हो गईं पर उसी समय आकाशवाणी हुई कि यह रामका सिर नहीं है, इसे छूना भी मत। यह तो रावणकी मायाका खेल है। यह सुनते ही रावण और वे दोनों सिर झट आकाशमें उड़कर छूमन्तर हो गए। तब सरमाने आकर सीताको बहुत सान्त्वना देकर और समझाकर शान्त किया।

जब मायासे भी काम न चल पाया तब रावण कामान्ध होकर सीताको अपना पराक्रम सुना-सुनाकर उन्हें फुसलानेका प्रयत्न करने लगा किन्त सीताने उसे ऐसा झाड़ा और लताड़ा कि वह उलटे पैरों भागता दिखाई दिया। सीताने कहा कि मेरे कण्ठको या तो रामके भुजदण्ड छू पावेंगे या तेरी कठोर तलवार-

प्रभु भुजदण्ड कि तव असि घोरा। सुन सठ यह प्रमान पन मोरा।

विरम विरम रक्षः किं वृथा रल्पितेन स्पृशति नहि मदीयं कण्ठसीमानमन्यः।

रघुपतिभुजदण्डादुत्पलश्यामकान्तेर्दशमुख भवदीयो निष्कृपो वा कृपाणः ।।

वहाँसे लौटकर रामका रूप बनाकर रावण अपने दोनों हाथों में अपने (रावणके) पाँच-पांच सिर लेकर सीताके सामने जा पहुँचा। उसे देखकर और राम समझकर ज्यों ही हर्षसे सीताने उससे मिलनेको बढ़कर कहा कि ये रावणके सिर उठा फेंकिए त्यों ही रावण नपुंसक होकर 'हे शिव हे शिव !' कहता हुआ तत्काल अन्तर्धान हो गया। तब तो रावणको राम-वेशधारी जानकर सीताको बड़ी चिन्ता हुई कि ऐसी मायाके चक्कर में मैं रामको भला कैसे पहचान पाऊँगी। उसी समय आकाशवाणी हुई कि जब मन्दोदरी जाकर रामके बाणोंसे मरे हुए रावणका चुम्बन करती होगी तब तुम रामको पहचान लोगी।

सुबेल पर्वतपर बैठे हुए रामने अंगदसे पूछा कि क्या रावणसे सन्धि करना ठीक होगा? अंगदने कहा-नहीं, यह कभी भी मत कीजिएगा। उसी रातको सोते हुए राम-लक्ष्मणको मार आनेके लिये रावणने प्रभजनी नामकी एक राक्षसी पठा भेजी। वहाँ वह देखती क्या है कि सदर्शन चक्र घूम-घूमकर उनकी रक्षा कर रहा है। उसी समय अंगदको जागा हुआ जानकर ज्यों ही वह राक्षसी निकल भागनेको लपकी त्यों ही अंगदने उसे वहीं पटककर उसका कचूमर निकाल डाला।

महोदरने रावणको फिर समझाया कि अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है, आप सीताको लौटा दीजिए। किन्तु रावण तो यह सुननेको तैयार ही नहीं था। इसी बीच सरमाने सीताको विमानमें बिठाकर रामके दर्शन जा कराए।

रामकी सेनाको देखकर रावणने कुम्भकर्णको जगानेका आदेश दे दिया। किसी-किसी प्रकार कुम्भकर्ण जागा और खा-पीकर रावणके पास आकर समझाने लगा कि रामको जानकी दे देनी चाहिए। जब उसकी बात भी रावणने नहीं मानी तब वह युद्ध के लिये निकल पड़ा और अन्तमें भयानक युद्धके पश्चात् वह भी मार डाला गया।

कुम्भकर्णकी मृत्युसे दुखी होकर रावणने अपने पुत्र इन्द्रजित्को यद्धके लिये भेज दिया जिसने जाते ही माया-युद्धके द्वारा राम-लक्ष्मणको नाग-पाशसे बाँध दिया। उस समय रावणकी आज्ञासे सरमा पुष्पक विमानपर बैठाकर सीताको राम-लक्ष्मणकी दशा जा दिखा आई जिसे देखकर तो जानकीकी घिग्घी बँध गई। इसी बीच गरुडने आकर सब नाग-पाश काटकर राम-लक्ष्मणको स्वस्थ कर दिया। गरुडके चले जानेपर मेघनादने एक माया-सीता बनाकर उसे समर-भूमिमें ले जाकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिखाए। यह देखकर तो राम लक्ष्मण भी व्याकुल हो उठे। फिर निकुम्भिल पर्वतपर वट-वृक्षकी जड़में बहेड़ेकी सामिधासे मेघनाद अपने शरीरका मांस हवन करने लगा। किन्तु हनुमान्ने आकर उसका वह यज्ञ भी विध्वस्त कर डाला और तभी लक्ष्मणने अपने बाणसे मेघनादका मुकुट-सहित सिर काटकर रावणके हाथोंमें ले जा उछाल गिराया।

मेघनादकी मृत्युसे क्षुब्ध रावणने लक्ष्मणपर अपनी वीर-नाशिनी शक्ति उठा चलाई.किन्तु हनुमान्ने उसे बीचमें ही पकड़कर समुद्रमें तोड़ फेंका। हनुमान् के वहाँसे हटते ही रावणने लक्ष्मणपर फिर ऐसी अपनी शक्ति चलाई कि वह उनका हृदय भेदकर पातालमें जा धंसी। यह देखकर विभीषणने जाम्बवान् के पास पहुंचकर उनसे हनुमान् का ठिकाना पूछा। वे सब हनुमान् को साथ लेकर रामके पास उठे चले आए जहाँ वे लक्ष्मणको गोद में लिए बैठे विलाप कर रहे थे। रामके कहनेसे वे सुषेण नामक वैद्यको लंकासे बुला लाए। उसके कहनेसे द्रोहिण पर्वतसे संजीवनी बूटी लानेके लिए

हनुमान् चल पड़े। रामने उनसे कहा कि तुम अयोध्या होकर जाओगे तो सबका कुशल भी लेते आना। सुषेणको लंकामें पहुँचाकर हनुमान् उड़ चले। द्रोणाचलपर बूटी न पहचान सकनेके कारण वे उस पर्वतको ही उखाड़े लिए चल पड़े। जिस समय वे अयोध्याके ऊपरसे उड़े चले आ रहे थे उस समय भरत बैठे हुए शान्ति-यज्ञ कर रहे थे। पर्वत लिए हुए हनुमानको देखकर उन्होंने जो बिना फलका बाण चलाया तो 'हा राम, हा लक्ष्मण' कहकर हनुमान् अचेत होकर गिर पड़े। उन्हें पहचान लेनेपर भरतको बड़ा दुःख हुआ। हनुमान् ने कहा कि मुझे झटपट रामके पास भेज पहुँचाइए। भरतने जब उन्हें अपने बाणपर चढ़ा लिया तब भरतकी प्रशंसा करके बाणसे उतरकर हनुमान्ने कहा कि मैं रामके प्रतापसे ही वहाँ पहुंचा जाता हूँ। मार्गमें मायाके महर्षि बने हुए कालनेमिको मारकर और मकरीका रूप धारण करनेवाली राक्षसीको पछाड़कर हनुमान् रामके पास जा पहुँचे। उस बूटीसे चेतन होकर लक्ष्मण इस प्रकार उठ बैठे मानो कुछ हुआ ही न हो। यह देखकर तो रामने लक्ष्मणको हृदयसे उठा लगाया और हनुमान् को बहुत साधुवाद दिया।

इस बीच रावणने रोहिताक्षको रामके पास भेज कहलाया कि आपने परशुरामको जीतकर शिवजीकी कृपासे जो परशु (फरसा) पाया है वह यदि मुझे दे दें तो मैं अभी सीताको लौटाए देता हूँ। किन्तु रामने यह स्वीकार नहीं किया और वे इन्द्रके भेजे हुए रथपर चढ़कर और हनुमानको ध्वजापर बैठाकर युद्ध के लिये चल दिए।

रामकी सेनाका विवरण सुनकर रावणने मन्दोदरीसे पूछा- तुम कहो तो रामको जानकी दे दूं या कहो तो उनके हाथसे मरकर स्वर्ग चला जाऊँ। मन्दोदरीने हँसकर कहा कि आज जो बुद्धि आपमें जाग उठी है वह सारा कुल नष्ट होनेपर कहाँसे आ पधारी ? अब आप घर में बैठ रहिए, मुझे युद्ध करनेकी आज्ञा दीजिए। इसपर रावण बहुत लज्जित हुआ और युद्धके लिये निकल पड़ा। राम और रावणका बड़ा प्रचण्ड युद्ध छिड़ गया जिसके लिये कहा गया है कि जैसे आकाश आकाशके समान और समुद्र समुद्रके समान है वैसे ही राम-रावणका युद्ध भी राम-रावणके युद्धके ही समान है। उसकी उपमा नहीं दी जा सकती-

गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमम्। रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव॥

उसी समय त्रिजटा और सरमाने अशोक-वाटिकामें खड़े हुए विमानपर सीताको बैठाकर राम और रावणका वह युद्ध ले जा दिखाया। रामने नौ बाणोंसे रावणके नौ सिर जब काट गिराए तब उसके दूसरे नौ सिर निकल आए। यह देखकर रामने उसपर ब्रह्मास्त्र उठा चलाया और रावण मरकर धरतीपर आ गिरा। रावणके मरते ही मन्दोदरी आदि उसकी सब रानियाँ रोने-बिलखने लगीं। उधर लक्ष्मण और हनुमान् जाकर सीताको विमानमें बैठाकर रामके पास लेते आए। उनके आनेपर रामने कहा कि यद्यपि सीता पतिव्रता हैं किन्तु बिना परीक्षाके वे मुझे नहीं छू सकती हैं। तत्काल सीताने जलती हुई अग्निसे कहा - यदि मैंने मन, वचन, शरीरसे जागते और सोते कभी रामके अतिरिक्त किसी दूसरे में पतिभाव रक्खा हो तो आप मुझे भस्म कर डालें। यह कहकर वे अग्नि में जा कूदी और अग्नि तत्काल शीतल हो गई। उसी समय मन्दोदरीने भी आकर रामसे पूछा कि अब मेरी क्या गति होगी : रामने कहा कि तुम विभीषणके घरमें रहकर लंकाका राज्य भोगो। यह कहकर उन्होंने बिभीषणको लंकाका राज्य दे दिया और फिर सीताको पुष्पक विमानपर बैठाकर युद्ध-भूमि ले जा दिखाई। इतना ही नहीं, उन्होंने सारी कथा भी कह सुनाई कि हम लोग कैसे दण्डकारण्यसे लंका पहुँच पाए थे।

इसके पश्चात् वे पुष्पक विमानपर बैठकर अयोध्याकी ओर चल दिए। सीताके मुखचन्द्रके कारण समुद्रमें ज्वार आनेसे उनका बनाया हुआ पुल लहरोंसे ढक गया था। इधर सीता बार-बार पूछे जा रही थीं कि आपका वह पुल कहाँ

चला गया। जब रामने सीताका मुंह अपने हाथसे उठा ढका तब ज्वार हट जानेपर पुल दिखाई देने लगा। अपने साथ वीर वानरोंको लेकर जब राम अयोध्या पहुँचे तब भरत आदि बन्धु-बान्धवों तथा मुनियों ने उनका स्वागत करके तभी उनका राज्याभिषेक कर दिया।

उसी समय अचानक अंगद उछलकर उठ खड़ा हुआ और ताल ठोककर क्रोधसे बोला कि अबतक आप जो कुछ कहते रहे, मैं कान दबाकर करता रहा किन्तु आपने मेरे निरपराध पिताको मारा है, इस वैरको मैं कभी नहीं भूल सकता। इसलिये आप, लक्ष्मण और हनुमान् अपनी सारी वानरसेनाके साथ भी आ जायँ तो भी मैं अकेला ही अपनी भुजाओंसे सबको मथे डाले देता हूँ। अंगदकी यह बात सुनकर राम और वानर-सेनाके स्वामी तौ बड़े क्षुब्ध हो उठे कि इसे हो क्या गया है। किन्तु लक्ष्मण हाथ जोड़कर उसके सामने आ पहुँचे कि बाली सचमुच निरपराध मारा गया था। उसी समय आकाशवाणी हुई कि जब मथुरामें कृष्णका अवतार होगा तब बाली ही (जरा नामक) व्याधका रूप धारण करके कृष्ण-रूपवाले रामका वध करेगा। यह सुनकर तथा राम और वानरोंको अञ्जलि बाँधे देखकर अंगदने लड़नेका विचार छोड़ दिया और रामकी बड़ी स्तुति की।

[यह प्रसंग हनुमन्नाटकको छोड़कर अन्य किसी भी रामायण में उपलब्ध नहीं है।]

इसके पश्चात् हनुमान् ने रामकी बड़ी स्तुति की और रामने वीर वानरोंकी उस सेनाको वस्त्र और आभूषण देकर बिदा कर दिया।

राज्याभिषेकके बहुत दिनों पश्चात् जब रामने लक्ष्मणके द्वारा सीताको वनमें ले जा छुड़वाया तब लक्ष्मणको बड़ा शोक हुआ और वे विलाप करने लगे।

[यहीं हनुमन्नाटक समाप्त हो जाता है।]

[किसीने भी प्रामाणिक रूपसे यह नहीं लिखा कि यह नाटक कब लिखा गया। इस महानाटकके अन्तमें यह श्लोक दिया हुआ है-

रचितमनिलपुत्रेणाथ वाल्मीकिनाब्धौ निहितममृतबुद्ध्या प्राड्महानाटकं यत्।
सुमतिनृपतिभोजेनोद्धृतं तत्क्रमेण ग्रथितमवतु विश्वं मिश्रदामोदरेण॥

यह महानाटक स्वयं हनुमान् ने रचा था। उसे अपने रामायणसे श्रेष्ठ समझकर हनुमान् की आज्ञासे वाल्मीकिने उसे समुद्र में फेंक डलवाया जिसे किसी-किसी प्रकार बुद्धिमान् राजा भोजने समुद्रमेंसे निकलवाया और दामोदर मिश्रने उसे क्रमसे लगाया।]

गोस्वामी तुलसीदासने अपने रामचरितमानसमें अंगद-रावण संवाद आदि कई प्रसंग और कुछ उद्धरण ज्योंके त्यों अपने रामचरितमानसमें ले लिए हैं। हनुमन्नाटककी कथाके अनेक प्रसंग ऐसे हैं जो अन्य किसी रामायणमें प्राप्त नहीं होते। इस बातका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता कि राजा भोजने कब किस रूपमें समुद्रसे इसका उद्धार किया। कहा जाता है कि हनुमानने शिलाओंपर यह रामचरित लिखा था। उन शिलाओंमेंसे जो शिलाएँ मिल सकी उन्हें धाराधीश्वर महाराज भोजने दामोदरमिश्रसे संकलित कराकर हनुमन्नाटकके रूपमें प्रस्तुत कर दिया है।]

॥श्रीहनुमन्नाटककी रामायणकथा पूर्ण॥

सूर्य सिद्धान्त का काल तथा शुद्धता

श्री अरुण कुमार उपाध्याय*

पूर्व अंक का शेष

भारतीय काल-गणना का स्पष्ट प्रतिपादन होने के बाद भी यूरोपियन विद्वानों ने इसे एक शिरे से नकार दिया और सारी गणना जूलियन तथा ग्रेगोरियन पंचांग के आधार पर anno Domini (AD) और *Before Christ* (*BC*) के आधार पर चलाया, जो आज BCE और CE के नाम से पर प्रचलित है। लेखक ने इस विस्तृत आलेख में सिद्ध किया है कि हमारी अपनी कालगणना पद्धति सूक्ष्म तथा स्पष्ट है। इस पद्धति को नष्ट करने के लिए ज्योतिष-शास्त्र को भी नकारने की प्रवृत्ति चल पड़ी।

5. ज्योतिष का वेदाङ्गत्व

वेद के 6 अगों में ज्योतिष को वेद का चक्षु कहा गया है

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः, सामवेदो, अथर्ववेदः, शिक्षा, कल्पो, व्याकरणं, निरुक्तं, छन्दो, ज्योतिषमिति।[1]

वेदास्तावत् यज्ञकर्मप्रवृत्ता
यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण।
शास्त्रादस्मात् कालबोधो यतः स्या-
द्वेदाङ्गत्वं ज्यौतिषस्योक्तमस्मात्॥9॥
शब्दशास्त्रं मुखं ज्यौतिषं चक्षुषी
श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्पः करौ।
या तु शिक्षाऽस्य वेदस्य सा नासिका
पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधैः॥10॥[2]

वेदाङ्ग ज्योतिष के नाम से 3 ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं- ऋक्, याजुष तथा आथर्वण। ऋक् तथा याजुष द्वारा 19 वर्ष चक्र में 7 अधिक मासों की गणना विधि है। आथर्वण में मुहूर्त विचार भी है। पर ग्रहगणित या सृष्टि विज्ञान नहीं है। किसी भी कल्प ग्रन्थ में इनके आधार पर यज्ञ का काल निर्धारण नहीं लिखा है। सूर्य सिद्धान्त में भी मुख्यतः शनि तक के ग्रहों की गति की गणना है। संक्षेप में सृष्टि विज्ञान की भी चर्चा 12 वें अध्याय में है- जिनका आधार सांख्य, पाञ्चरात्र तथा पुरुष-सूक्त है। किन्तु उससे लोकों, मण्डलों का ज्ञान नहीं होता, जिनकी वेदों में चर्चा है। 7 लोकों का वर्णन

*भारतीय पुलिस सेवा (अ. प्रा.)सी -/47, (हवाई अड्डा के निकट) पलासपल्ली, भुवनेश्वर।

[1] मुण्डकोपनिषद्,1/1/5, शाङ्करभाष्यसहित, स्वामी सच्चिदानन्देन्द सरस्वती (सम्पा.), अध्यात्मप्रकाश कार्यालय, होलेनरसीपुर, शक सं.1882 (1960ई.), पृ.13

[2] भास्कराचार्य, सिद्धान्त शिरोमणि, मध्यमाधिकार, कालमानाध्याय, बापूदेवशास्त्री (सम्पादक),1929ई. जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, वाराणसी, पृ. 3

केवल पुराणों में है। स्वयम्भू, परमेष्ठी, सौर, चान्द्र मण्डलों तथा सृष्टि के10 सर्गों का वर्णन भी वहीं है। अतः सूर्य सिद्धान्त के साथ पुराण मिलाने पर ही वेद के पूर्ण ज्योतिष का ज्ञान होता है। गणित ज्योतिष का उपयोग भूत-भविष्य जानने में भी है-इसके लिये होरा (व्यक्तिगत अल) तथा संहिता (देश का बविष्य, मुहूर्त) हैं। इनको मिलाने पर ही ज्योतिष पूर्ण वेदाङ्ग हो सकता है क्योंकि वेद द्वारा भूत-भविष्य का भी ज्ञान होता है-

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्॥[3]

मनुस्मृति का भी कथन है कि चारों वर्ण, तीनों लोक तथा चारों आश्रम के जो भूत, भविष्य एवं वर्तमान हैं, वे वे से चलते हैं-

चातुर्वर्ण्य त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।

भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति॥[4]

यहाँ 3 लोकों का ज्ञान पुराणों से तथा भूत-भविष्य का ज्ञान होरा-संहिता से होता है।

6. मयासुर के बाद का सूर्य सिद्धान्त

मयासुर के बाद संवत्सर आरम्भ के समय गणना के परीक्षण की आवश्यकता पड़ती है। शक का अर्थ है किसी निर्दिष्ट काल से दिनों की गणना जिससे ग्रह गति आदि निकाली जा सकती है। शक शब्द का अर्थ है।-1 का समूह।1 का चिह्न कुश है, उनका समूह शक्तिशाली होने से शक हो जाता है। बड़े आकार का कुश-जैसा वृक्ष भी शक है, जैसे उत्तर भारत में साल (शक = सखुआ) है। सालवन के क्षेत्र में रहने के कारण सूर्यवंश की शाखा शाक्य कही जाती थी, इसमें जन्म होने के कारण सिद्धार्थ को शाक्यमुनि कहा गया। दक्षिण भारत का शक वृक्ष शक-वन या सागवान है। किंतु समाज जिन नियमों से चलता है उसका निर्धारण करने का कालमान सम्वत्सर है। ऋतु परिवर्तन होने के समय इसकी आवश्यकता होती है। सूर्य सिद्धान्त में संशोधन की आवश्यकता इन कालों में हुई-

(1) 13902 ई.पू.- विवस्वान् द्वारा मूल सिद्धान्त। उससे 2100 वर्ष पूर्व कार्तिकेय द्वारा धनिष्ठा या माघ मास (वर्षा) से वर्ष आरम्भ हुआ।

(2) 9233 ई.पू.- मय असुर द्वारा संशोधन। 4669 वर्ष अन्तर तथा जल प्रलय के कारण अक्ष भ्रमण की गति में अन्तर। 1-11-8476 ई.पू. में इक्ष्वाकु शासन आरम्भ-मेष सूर्य के चैत्र मास का आरम्भ।

(3) 6177 ई.पू.- परशुराम के निधन पर कलम्ब (कोल्लम्) सम्वत्। परशुराम19वें त्रेता में थे। यहां। युग खण्ड 360 वर्षों का है। त्रेता में10 खण्ड होंगे। प्रथम10 खण्ड विवस्वान के पूर्व बीत गये। उनके बाद के त्रेता में11वां खण्ड आरम्भ हुआ, तभी10 से अधिक खण्ड सम्भव हैं। दूसरा त्रेता 9102 ई.पू. में आरम्भ हुआ, उसमें 8 त्रेता 9102 -8 360 = 6222 ई.पू. में बीते। उससे 360 वर्षों के भीतर परशुराम का काल है। सहस्र वर्षों को छोड़ने पर 824 ई. में कोल्लम सम्वत् आरम्भ हुआ, अतः परशुराम काल 7000-823 में होगा (0 वर्ष नहीं गिना जाता है)। इसका अन्य प्रमाण है कि मेगास्थनीज ने सिकन्दर से 6451 वर्ष 3 मास पूर्व अर्थात् 6777 ई.पू. अप्रैल मास में डायोनिसस का

[3] पुरुष-सूक्त, वाजसनेयि यजु.31/2

[4] मनुस्मृति.12/97, हरिहर प्रसाद, (सम्पादक एवं अनुवादक)1890ई. निर्णयसागर प्रेस, मुंबई, पृ. 421

भारत आक्रमण लिखा है जिसमें पुराणों के अनुसार सूर्यवंशी राजा बाहु मारा गया था उससे15 पीढ़ी बाद हरकुलस (विष्णु-पृथ्वी को धरण करने वाला- पृथिवी त्वया धृता लोकाः, देवि त्वं विष्णुना धृता) का जन्म हुआ। इस काल के विष्णु अवतार परशुराम थे। उनका काल प्रायः 600 वर्ष बाद आता है जो15 पीढ़ी का काल है। मयासुर के 3044 वर्ष बाद ऋतु 1.5 मास पीछे खिसक गया था, अतः नये सम्वत् का प्रचलन हुआ।

(4) 3102 ई.पू. -पुनः 3075 वर्ष के बाद कलि सम्वत् या 3100 वर्ष बाद लौकिक या सप्तर्षि वर्ष आरम्भ हुआ।

(5) कलि आरम्भ के 3044 वर्ष बाद विक्रमादित्य ने सम्वत् आरम्भ किया। उसी काल में ज्योतिष के मुख्य ग्रन्थ लिखे गये-वराहमिहिर की बृहत्-संहिता, बृहज्जातक, पञ्चसिद्धान्तिका -427 शक से गणना, जिस शक का आरम्भ 612 ई.पू. या युधिष्ठिर शक 2526 में हुआ। ब्रह्मगुप्त के पिता जिष्णुगुप्त इनके समकालीन थे। अतः ब्रह्मगुप्त का ब्राह्म स्फुट-सिद्धान्त 550 शक (612-550= 62 ई.पू.) में हुआ। इन दोनों के देहान्त के बहुत बाद विक्रमादित्य के पौत्र शालिवाहन द्वारा 78 ई. में शक आरम्भ हुआ जिसका प्रयोग उनके द्वारा सम्भव नहीं है। विक्रमादित्य काल में ही पुराणों का अंशोधन बेताल भट्ट द्वारा हुआ।

जिन स्थानों पर ये सम्पादन कार्य हुये उनको विशाला कहा गया (उज्जैन, वैशाली)। इसके पूर्व बदरी क्षेत्र में कृष्ण द्वैपायन ने ब्रह्म-सूत्र लिखा था, अतः उसे भी विशाल कहा गया था। शौनक के महाशाल कहा जाता था, क्योंकि कलि आरम्भ में उन्होंने पुराणों का संशोधन किया था। अतः सूर्य सिद्धान्त में मकर संक्रान्ति से उत्तरायण का आरम्भ है जैसे पुराणों में है।

भविष्य-पुराण, प्रतिसर्ग के अनुसार,

एवं द्वापरसन्ध्याया अन्ते सूतेन वर्णितम्। सूर्यचन्द्रान्वयाख्यानं तन्मया कथितं तव॥[5]

आगे भी कहा गया है

विशालायां पुनर्गत्वा वैतालेन विनिर्मितम्। कथयिष्यति सूतस्तमितिहाससमुच्चयम्॥
तन्मया कथितं सर्वं हृषीकोत्तम पुण्यदम्। पुनर्विक्रमभूपेन भविष्यति समाह्वयः॥[6]
मेरौ मेषादि चक्रार्धे देवाः पश्यन्ति भास्करम्। सकृदेवोदितं तद्वदसुराश्च तुलादिगम्॥[7]

विष्णु पुराण का वचन है

शरद्वसन्तयोर्मध्ये विषुवं तु विभाव्यते। तुला मेषगते भानौ समरात्रिदिनं तु तत्॥67॥
कर्कटावस्थिते भानौ दक्षिणायनमुच्यते। उत्तरायण्मप्युक्तं मकरस्थे दिवाकरे॥68॥[8]

वराहमिहिर ने भी इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है कि

स्वस्ति श्रीनृप सूर्यसूनुज-शके याते द्वि-वेदा-म्बर-4 (3042)
मानाब्दमिते त्वनेहसि जये वर्षे वसन्तादिके।

[5] भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग, 3/1
[6] प्रतिसर्ग (2/23/35-38
[7] सूर्य सिद्धान्त12/67
[8] विष्णु पुराण (2/8

चैत्रे श्वेतदले शुभे वसुतिथावादित्यदासादभूद्
वेदाङ्गे निपुणे वराहमिहिरो विप्रो रवेराशीर्भिः॥[9]

वराहमिहिर की बृहत् संहिता का कथन है

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्-द्विक-पञ्च-द्वि (2526) युतःशककालस्तस्य राज्ञस्या॥[10]

और भी,

आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसादः।
आवन्तिको मुनिमतान्वलोक्य सम्यग् घोरां वराहमिहिरो रुचिरां चकार॥9॥[11]

अवन्तिका में निवास का महत्त्व विक्रमादित्य के काल में ही था, जिसका उल्लेख वराहमिहिर-बृहत् संहिता में आया है

आश्लेषा दक्षिणमुत्तरमयनं रवेर्धनिष्ठाद्यम्।
नूनं कदाचिदासियेनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु॥1॥
साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटकाद्यं मृगादितश्चान्यत्।
उक्ताभावो विकृतिः प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्तिः॥2॥[12]

पञ्चसिद्धान्तिका, अध्याय 3 (पौलिश सिद्धान्त)

अर्केन्दुयोगचक्रे वैधृतमुक्तं दशर्क्ष सहिते (तु) ।
यदि च(क्रं) व्यतिपातो वेला मृग्या (युतैः भोगैः॥20॥
आश्लेषार्धादासीद्यदा निवृत्तिः किलोष्णकिरणस्य।
युक्तमयनं तदाऽऽसीत् साम्प्रतमयनं पुनर्वसुतः॥21॥

पञ्चसिद्धान्तिका में आगे भी उलेलेख है कि

सप्ताश्विवेद (427) संख्यं शककालमपास्य चैत्रशुक्लादौ।
अर्धास्तमिते भानौ यवनपुरे सौम्य दिवसाधः॥8॥[13]

अर्थात् शक 427 चैत्र शुक्ला को जब सूर्य का यवनपुर (रोमकपत्तन-उज्जैन से 90 अंश पश्चिम) में अर्ध अस्त (सूर्य सन्ध्या से उदय तक अस्त रहता है, उसका मध्य विन्दु मध्य रात्रि होगा) हुआ, उस दिन सौम्य (सोम-पुत्र बुध) का था। रोमकपत्तन की मध्य रात्रि उज्जैन का सूर्योदय होगा। श्री नरसिंह राव के जगन्नाथ होरा सेगणना करने पर केवल वराहमिहिर निर्दिष्ट 612 ई.पू. का शक ही ठीक निकलता है, अन्य काल्पनिक शक नहीं।

612 ई.पू.- 18-2-185 ई.पू.में चैत्र शुक्ल। का आरम्भ 18 ता. को10-10-24 बजे हुआ। किन्तु उज्जैन में

[9] कुतूहल मञ्जरी
[10] वराहमिहिर-बृहज्जातक, अध्याय 28-उपसंहार-
[11] पञ्चसिद्धान्तिका, अध्याय।
[12] वराहमिहिर-बृहत् संहिता,13/3
[13] वराहमिहिर, बृहत् संहिता, 3/1-2

सूर्योदय 7-6-39 बजे था, अतः17-2-185 ई.पू. की तिथि ली जायेगी जो बुधवार है।

550 ई.पू.- पण्डित कोटा वेङ्कटाचलम् ने शक राजा का अर्थ ईरान के प्रसिद्ध राजा डेरिअस किया है, जो प्रायः इस काल में शासन कर रहा था। युधिष्ठिर शक का आरम्भ 3076 ई.पू. मानने पर यह वर्ष आता है। तथापि इसका कोई आधार नहीं है- डेरिअस का शासन 675-628 ई.पू. तक था, उसने बेबिलोन पर अधिकार किया था, भारत के किसी भाग पर नहीं। उसका कोई भी शक ईरान या बेबिलोन में भी प्रचलित नहीं है क्योंकि उसने कोई शक आरम्भ ही नहीं किया था। शक का अर्थ शक जाति लेने के कारण ऐसी कल्पनायें हुई हैं। यह शक लेने पर 427 वर्ष का आरम्भ 5-3-124 ई.पू. में होगा। चैत्र शुक्ल1 का आरम्भ 6-44-24 बजे, सूर्योदय 6-53-44 बजे, अतः 4 मार्च की तिथि गुरुवार।

57 ई.पू.- विक्रम सम्वत्-स्पष्टतः यह सम्वत् है, शक नहीं। पर शक तथा सम्वत् का अर्थ नहीं जानने के कारण इसकी भी जांच की जा रही है। 427 वर्ष का चैत्र शुक्लाका आरम्भ 5-3-371 ई. को1-56-30 बजे। 4 मार्च गुरुवार को सूर्योदय 6-52-20 बजे।

78 ई.- शालिवाहन शक (क) 427 गम्य वर्ष-20-2-505 रविवार, 8-08-08 से चैत्र शुक्ला आरम्भ, सूर्योदय 7-0-22 बजे। अतः 21-2-505, सोमवार को वर्ष आरम्भ माना जायेगा।

(ख) 427 गत वर्ष का चैत्र मास 13-3-506 को 5-04 बजे आरम्भ।12 ता. को सूर्योदय 6-44-14, शुक्रवार। अतः वराहमिहिर का शक केवल 612 ई.पू. में ही ठीक है जो उन्होंने स्वयं लिखा है। ब्रह्मगुप्त ने भी चाहमान शक का ही प्रयोग किया है जिसे वराहमिहिर ने 612 ई.पू. में आरम्भ बताया है। वह अपने तथा अन्य ग्रन्थों में भी जिष्णुगुप्त के पुत्र के रूप में ही विख्यात हैं। जिष्णुगुप्त के पिता अवन्तिवर्मन् (103-33 ई.पू.) के काल में ही विक्रमादित्य ने पशुपतिनाथ में पने संवत् का आरम्भ किया था। स्वयं जिष्णुगुप्त भी अल्प समय (1 वर्ष से कम) के लिये नेपाल के राजा रहे। अधिकार से हटने के बाद वे विक्रमादित्य के पास आ गये तथा वराहमिहिर, कालिदास-दोनों ने उनको अपना समकालीन ज्योतिषी बताया है। ब्रह्मगुप्त ने स्पष्ट रूप से अपना शक चापवंश के तिलक का कहा है, जिसे पुराण में चपहानि कहा गया है। यह 4 मुख्य राजवंशों में था जिनका संघ राजा शुद्रक की अध्यक्षता में आबू पर्वत पर 756 ई.पू. में बना था जिससे असुर आक्रमण रोका जा सके। चपहानि वंश के प्रमुख (चापवंश-तिलक) ने 612 ई.पू. में असीरिया की राजधानी निनेवे को पूरी तरह ध्वस्त कर दिया, जिसका उल्लेख बाइबिल में कई स्थानों पर है। इसीलिये इस अवसर का शक विख्यात हुआ तथा इसका विक्रमादित्य काल तक प्रचलन रहा।

श्रीचापवंशतिलके श्रीव्याघ्रमुखे नृपे शकनृपाणां
पञ्चाशत् संयुक्तैर्वर्षशतैः पञ्चभिरतीतैः॥
ब्राह्मः स्फुटसिद्धान्तः सज्जनगणितज्ञगोलवित् प्रीत्यै
त्रिंशद्वर्षेन कृतो जिष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन॥[14]
एतस्मिन्नेवकाले तु कान्यकुब्जो द्विजोत्तमः। अर्बुदं शिखरं प्राप्य ब्रह्महोममथाकरोत्॥45॥
वेदमन्त्रप्रभावाच्च जाताश्चत्वारि क्षत्रियाः। प्रमरस्सामवेदी च चपहानिर्यजुर्विदः॥46॥

[14] ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, 24/7-8

त्रिवेदी च तथा शुक्लोऽथर्वा स परिहारकः॥47॥

अवन्ते प्रमरो भूपश्चतुर्योजन विस्तृता॥49॥[15]

चित्रकटगिरिर्देशे परिहारो महीपतिः। कालिंजर पुरं रम्यमक्रोशायतनं स्मृतम्॥1॥

राजपुत्राख्यदेशे च चपहानिर्महीपतिः॥2॥

अजमेरपुरं रम्यं विधिशोभासमन्वितम्॥3॥

शुक्लो नाम महीपालो गत आनर्तमण्डल।द्वारका नाम नगरीमध्यास्य सुखिनोऽभवत्॥4॥

विष्णु (जिष्णु) गुप्तोऽपि चैवं देव स्वामी सिद्धसेनश्च चक्रे।

दोषश्चैषां जायते अष्टावरिष्टं हित्वा नायुर्विंशतः स्याद् अधस्तात्॥7॥[16]

कालिदास कृत ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थ की प्रस्तावना में भी इसका संकेत प्राप्त है

नृपसभायां पण्डितवर्गा-

शङ्कुसुवाग्वररुचिर्मणिरङ्गुदत्तो जिष्णुस्त्रिलोचनहरो घटखर्पराख्यः।

अन्येऽपि सन्ति कवयोऽमरसिंहपूर्वा यस्यैव विक्रमनृपस्य सभासदोऽमो॥22.8॥[17]

अंशुवर्मन के कई अभिलेख उपलब्ध हैं। बिना किसी प्रमाण के यह मान लिया गया है कि उनकी तिथियां श्रीहर्ष शक (456 ई.पू.) में हैं तथा श्रीहर्ष को भी हर्षवर्धन (605-646 ईस्वी) मान लिया गया है, जिनकी किसी भी पुस्तक या जीवनी में हर्षवर्धन, बाणभट्ट या हुएनसांग द्वारा शक आरम्भ करने का कोई उल्लेख नहीं है। अंशुवर्मन के13 अभिलेख इस वेबसाइट पर उपलब्ध हैं, जिनकी तिथियां दी जाती हैं

http://indepigr.narod.ru/licchavi/content81.htm

(1) क्रमांक 69- सम्वत् 535 श्रावण शुक्ल 7. यदि इसे 456 ई.पू. के श्रीहर्ष शक में माना जाय तो इसका काल 79 ईस्वी होगा जो उनके 33 ई.पू. में देहान्त के बाद है तथा इस समय 78 ई. का शालिवाहन शक आरम्भ हो चुका था। अतः चाप शक में यह 77 ई.पू. का है जो अंशुवर्मन् के शासन काल का है तथा अभी विकम सम्वत् आरम्भ नहीं हुआ था।

(2) क्रमांक 76-सम्वत् 29, ज्येष्ठ शुक्ल10-अचानक अंशुवर्मन् का काल 500 वर्ष पीछे नहीं जा सकता। अतः इसमें विक्रम सम्वत् का प्रयोग है जो 57 ई.पू. में आरम्भ हुआ।

(3) क्रमांक 77, सम्वत् 30, ज्येष्ठ शुक्ल 6।

(4) क्रमांक 78, सम्वत् 31, प्रथमा (मास का नाम लुप्त, पर अगले लेख के अनुसार पौष होगा) पञ्चमी-इस वर्ष अधिक पौष मास था, अतः यह शुद्ध प्रथम शुक्ल पक्ष की तिथि है।

(5) क्रमांक 79, सम्वत् 31, द्वितीया पौष शुक्ल अष्टमी।

(6) क्रमांक 80, सम्वत् 31, माघ शुक्ल13।

[15] भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग पर्व,1/6

[16] प्रतिसर्ग,1/7

[17] **कालिदास, ज्योतिर्विदाभरण,** अध्याय22, ग्रन्थाध्यायनिरूपणम्

(7) क्रमांक 81, सम्वत् 32, आषाढ़ शुक्ल13।

(8) क्रमांक 83, सम्वत् 34, प्रथमा पौष शुक्ल 2-अधिक मास का वर्ष।

(9) क्रमांक 84, सम्वत् 36, आषाढ़ शुक्ल12।

(10) क्रमांक 85, सम्वत् 37, फाल्गुन शुक्ल 5।

(11) क्रमांक 86, सम्वत् 39, वैशाख शुक्ल10।

(12) क्रमांक 87, सम्वत् 43, व्यतीपात-ज्येष्ठ कृष्ण (तिथि लुप्त)।

(13) क्रमांक 89, सम्वत् 45, ज्येष्ठ शुक्ल (तिथि लुप्त)।

जिष्णुगुप्त के भी 2 अभिलेख हैं, पर उनकी तिथियां मिट गयीं हैं। उनके कई सिक्के मिले हैं, जिनमें 1 का चित्र दिया जाता है।

http://en.wikipedia.org/wiki/Licchavi (kingdom).

घोड़े के ऊपर 'श्री जिष्णुगुप्तस्य' लिखा है।

जिष्णुगुप्त का सिक्का

अतः ब्रह्मगुप्त ने 550 शक अर्थात् 612-550 = 62 ई.पू. में ब्राह्म-स्फुट-सिद्धान्त लिखा, जब उनकी आयु 30 वर्ष थी। (6) सूर्य सिद्धान्त के 2 प्रकार विक्रमादित्य काल में ही वराहमिहिर की पञ्च-सिद्धान्तिका में अन्य प्रकार का सूर्य सिद्धान्त है। यह सूर्य सिद्धान्त का छोटा रूप है जिसमें कल्प के बदले कलि युग आरम्भ से गणना दी गयी है। इसमें मन्दोच्च परिवर्तन बहुत कम है जिसे ग्रह भगण में मिला दिया गया है। यह सूर्य सिद्धान्त का ही छौता रूप है जिसे तन्त्र कहा जाता है। सम्भवतः विक्रमादित्य काल में इसका संशोधन जिष्णुगुप्त द्वारा किया गया जो नये सम्वत्सर आरम्भ के लिये जरूरी था। इस कारण पशुपतिनाथ में सम्वत् आरम्भ हुआ तथा राज्यहीन होने पर वे विक्रमादित्य के आश्रय में आगयो ऊनकी पुस्तक का मुख्य उद्देश्य सूर्य-सिद्धान्त के ही गणित की विशद व्याख्या है। उसे मुख्य ग्रन्थ बनाने के लिये ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट की निन्दा की है। इसके उत्तर में वटेश्वर ने एक पूरा अध्याय ही ब्रह्मगुप्त की आलोचना के लिये लिखा है। जिष्णुगुप्त का यह महत्त्वपूर्ण काम ही उनको इतनी प्रसिद्धि दिला सकता था जिसके कारण ब्रह्मगुप्त अपने नाम से अधिक जिष्णुसुत के रूप में अधिक विख्यात थे।

7. सूर्य सिद्धान्त की गणितीय शुद्धता

प्राचीन ज्योतिष के पुनर्विकास के कई उदाहरण प्रत्यक्ष हैं-

1. पूरे विश्व का सूक्ष्म मानचित्र. पुराण काल के प्राचीन सन्दर्भ स्थानों के बदले उज्जैन से 90-90 अंश के अन्तर पर 4 नगरों का उल्लेख।
2. ग्रहों की गति की सूक्ष्म माप तथा मन्दोच्च चक्र की गणना। शनि के मन्दोच्च का भ्रमण। कल्प में 39 बताया गया है। इतनी सूक्ष्म माप आज भी सम्भव नहीं है।
3. विश्व के सभी भागों में लोग सूर्यग्रहण की गणना कर लेते थे जिसके लिये आज भी कोई स्पष्ट विधि नहीं है।

4. ब्रह्माण्ड की माप सूर्य-सिद्धान्त, पुराणों तथा वेदों में है। आधुनिक युग में इसका अनुमान1930 से आरम्भ हुआ तथा सही माप1950 के बाद हुई जिसमें अभी तक संशोधन चल रहा है। सौर मण्डल की माप तथा उस क्षेत्र का 3 विष्णुपद, 6 वषट्कार, 30 धाम में विभाजन है। आधुनिक ज्योतिष में अभी तक सुअर मण्डल की परिभाषा तथा माप नहीं है।

2001 में मेरे 3 प्रकाशित निबन्धों में भागवत पुराण तथा यजुर्वेद के आधार पर यूरेनस तक सौर वायु तथा135 कि.मी. से अधिक व्यास के 60000 बालखिल्यों का वर्णन तथा उनकी दूरी का वर्णन था जिसका पता 2007 में नासा के यूरेनस यान से ही लगा। सौर मण्डल की सीमा या माप अभी भी अज्ञात है। माया कैलेण्डर में भी ब्रह्माण्ड की माप तथा तारों का वर्णन है।

5. आर्यभट ने उत्तरी ध्रुव जल में तथा दक्षिणी ध्रुव स्थल में लिखा है। पर1909 में एडमिरल पियरी के उत्तरी ध्रुव पहुंचने के बाद भी बाल गंगाधर तिलक ने आर्यों का मूल निवास आर्कटिक में लिखा। 1985 में पहली बार पता चला कि दक्षिणी ध्रुव वास्तव में स्थल पर है, 2 भूखण्डों के बीच के जल भाग में नहीं।

6. प्राचीन काल में विश्व के सभी भागों में खनिजों की स्थिति का पता था-आज भी यह अनुमान पर ही आधारित है। भूगर्भ शास्त्र तथा रसायन विज्ञान की पूर्ण जानकारी के बिना यह सम्भव नहीं है।

7. फलित ज्योतिष आकाशीय ग्रहों के मानव जीवन पर प्रभाव का अध्ययन करता है। पृथ्वी की सृष्टि आकाश मे होने के कारण यह निश्चित रूप से उस के अनुसार होना चाहिये, पर आज तक इसकी कोई माप नहीं है। सूर्य सिद्धान्त की शीघ्र परिधियों के मान से स्पष्ट है कि ग्रहों की सूर्य केन्द्रित दूरियों का अनुपात ज्ञात था। 4 पदों में स्पष्ट ग्रह निकालने की विधि भी आधुनिक पद्धति के समरूप है जिसमें अनन्त श्रेणी का 2 बार व्यवहार होता है, पर इसके लिये प्रायः 600 पदों की गणना करनी पड़ती है। वही शुद्धता 4 पदों मे लाना अभी तक एक आश्चर्य है। इसकी विशेष व्याख्या सिद्धान्त दर्पण, अध्याय 5 की गणितीय व्याख्या देखें (खण्ड 2, पृष्ठ198-214)।

8. प्राचीन तथा विवस्वान् के सन्दर्भ

नगर पुराणों तथा वेदों में ब्रह्मा का केन्द्रीय स्थान पुष्कर बताया गया है। यहां न्यग्रोध या वट वृक्ष की कल्पना की गयी है, जो पूरे पृथ्वी का भौगोलिक स्वरूप है। उसका मूल दक्षिणी गोलार्ध में होगा जहां के निवासी न्यग्रोध या आज की भाषा में नीग्रो हैं। पुष्कर केन्द्र से12 अंश (1 मुहूर्त) पश्चिम कहा गया है। विष्णु पुराण में

एवं पुष्करमध्येन यदा याति दिवाकरः।त्रिंशद्भागं तु मेदिन्याः तदा मौहूर्तिकी गतिः।26।[18]

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्नो विश्वस्य बाधतः॥13॥

तमु त्वा दध्यङ् ऋषिः पुत्र ईधे अथर्वणः। वृत्रहणं पुरन्दरम्॥141॥[19]

न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम्। तस्मिन्निवसति ब्रह्मा पूज्यमानः सुरासुरैः॥[20]

[18] विष्णु पुराण 2/8 [19] ऋक् 6/16

ब्रह्मा ह ब्रह्माणं ससृजे। स खलु ब्रह्मा सृष्टचिन्तामापेदे।[21]

वैराज नाम भवनं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥9॥

सभा कान्तिमती नाम देवानां शर्मदायिका॥13।

अहं यत्र समुत्पन्नः पद्मन्तद्विष्णुनाभिजम्। पुष्करं प्रोच्यते तीर्थमृषिभिर्वेदपाठकैः॥20॥[22]

यह केन्द्र यदि उज्जैन है तो वर्तमान बुखारा (उजबेकिस्तान, प्राचीन पारस) 39°48' उत्तर, 64°25' पूर्व ही पुष्कर है। यह पामीर क्षेत्र में है जो एक भौगोलिक मेरु था। यहां से 4 दिशाओं में राजमार्ग जाते थे। इन्द्र के नाम से कई प्रसिद्ध क्षेत्र हैं आन्ध्र प्रदेश का अमरावती16°35' उत्तर 80°33' पूर्व, कटक का अमरेश्वर 20° 28' उत्तर, 85°54' पूर्व, भद्रक (आखण्डल मणि-आखण्डल = इन्द्र), 21°03' उत्तर, 86°31' पूर्व। इन सबसे राजस्थान में अजमेर के निकट का पुष्कर 26°30' उत्तर, 74°33' पूर्व प्रायः1 मुहूर्त पश्चिम है। अजमेर के पुष्कर को स्कन्दपुराण में इन्द्रप्रस्थ का पुष्कर कहा गया है। महाभारत युद्ध के लिये दुर्योधन ने जब नारायणी सेना मांगी थी तो बदले में उसे पुष्कर यादव राज्य को देना पड़ा था। पेरु का कुजको भी ब्रह्मा के पुष्कर की तरह 4 राजमार्गों का केन्द्र था। न्यग्रोध क्षेत्र में भी एक मेरु है जो केन्या में है तथा प्रायः विषुव रेखा पर है

(1) मेरु (तान्जानिया) अरुमेरु जिला, निवासियों मेरु या बण्टू भाषा में वामेरु। 3°14' दक्षिण, 36°45' पूर्व।

(2) केन्या का किलिमन्जारो जिसका मूल नाम मेरु था 3°4'33" दक्षिण, 37°21'12" पूर्व। निकट में मेरु नगर 0°03' उत्तर, 37°39' पूर्व।

(3) झारखण्ड के हजारीबाग में मेरु 24°1'46" उत्तर, 85°27'26" पूर्व, प्राचीन कर्क रेखा पर, उज्जैन से10° पूर्व।

(4) मलयेसिया में क्लांग जिले का नगर मेरु 3°8' उत्तर,101°27' पूर्व।

(5) पश्चिमी आष्ट्रेलिया का मेरु 28°48'11" दक्षिण,114°41'10" पूर्व।

(6) फ्रान्स का मेरु 49°14' उत्तर 2°8' पूर्व, उज्जैन से 73°45' पश्चिम।

(7) हिमालय का मेरु पर्वत, जिसका कुछ ज्योतिष पुस्तकों में उल्लेख है। इसकी चोटी उज्जैन से मात्र 2°8' पूर्व है। 30°52'5" उत्तर, 79°1'56" पूर्व।

(8) थाईलैण्ड में बैंगकौक का फ्रा मेरु मन्दिर,13°45' उत्तर,100°35' पूर्व

(9) यवद्वीप (जावा) का सुमेरु पर्वत 8°6' दक्षिण,120°35' पूर्व (उज्जैन से 45° पूर्व)

(10) चीन का सुमेरु पर्वत 36°1' उत्तर106°15' पूर्व, लाल रंग के पत्थर का जैसा पुराणों में पूर्वी मेरु का रंग लिखा है। यहां सोना, कोयला, ताम्बा, स्फटिक, चूना, जिप्सम आदि का विपुल भण्डार है।

(11) पेरु में टीटीकाका झील के निकट अमरु मेरु (अपर या पश्चिमी मेरु) में प्राचीनतम भवन हैं जिनको लोकभाषा में स्वर्ग-द्वार कहते थे।16°12'52" दक्षिण, 69°30'21" पश्चिम।

(12) फिजी में मेरु जलमार्ग179°54' पूर्व,16°33' पूर्व॥

[20] विष्णु पुराण 2/4/85, ब्रह्म पुराण18/87 आदि

[21] गोपथ ब्रा.1/16

[22] पद्म पुराण, सृष्टि खण्ड, अध्याय15

ये सभी मानचित्रों के लिये स्थानीय केन्द्र थे। ज्योतिष ग्रन्थों तथा पुराण-दोनों में भूपद्म के 4 दल कहे गये हैं

भारत, पूर्व में भद्राश्व, पश्चिम में केतुमाल, तथा विपरीत दिशा में (उत्तर-) कुरु। इसका अर्थ है कि प्राचीन काल में 90 90 अंश देशान्तर के भूभागों के अलग अलग मानचित्र बनते थे। इसी प्रकार दक्षिणी गोलार्ध के 4 मानचित्रा ध्रुवों के पास समतल मानचित्र का मापदण्ड अनन्त होगा। उत्तरी ध्रुव जल भाग में होने के कारण कोई समस्या नहीं है, किन्तु दक्षिणी ध्रुव स्थल होने के कारण इसका आकार अनन्त हो जायेगा, अतः इसे अनन्त (आण्टार्कटिका) कहते थे तथा इसका अलग से वर्णन है। ज्योतिष में उज्जैन को केन्द्र मान कर उससे 90 90 अंश के स्थानों का वर्णन है। पर पुराणों में अन्य 4 स्थानों के नाम हैं जो इन्द्र, यम, वरुण, सोम की पुरियां थीं।

स्रोत	केन्द्र	90° पूर्व	90° पश्चिम	180° पूर्व
पुराण	वस्वौकसारा (इन्द्र)	विभावरी (सोम)	संयमनी (यम)	सुखा (वरुण)
ज्योतिष	उज्जैन (लका)	यमकोटिपत्तन(भद्राश्व)	रोमकपत्तन(केतुमाल)	सिद्धपुर (कुरु)

विष्णु-पुराण के अनुसार

भद्राश्वं पूर्वतो मेरोः केतुमालं च पश्चिमे। वर्षे द्वे तु मुनिश्रेष्ठ तयोर्मध्यमिलावृतः॥24॥

भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा। पत्राणि लोकपद्मस्य मर्यादाशैलबाह्यतः॥40॥

मत्स्य पुराण113-

चातुर्वर्ण्यस्तु सौवर्णो मेरुश्चोल्बमयः स्मृतः।12।

नाभीबन्धनसम्भूतो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।पूर्वतः श्वेतवर्णस्तु ब्राह्मण्यं तस्य तेन वै॥14॥

पीतश्च दक्षिणेनासौ तेन वैश्यत्वमिष्यतौभृङ्गिपत्रनिभश्चैव पश्चिमेन समन्वितः।

पार्श्वमुत्तरतस्तस्य रक्तवर्णं स्वभावतः। तेनास्य क्षत्रभावः स्यादिति वर्णाः प्रकीर्तिताः॥16॥

मध्ये त्विलावृतं नाम महामेरोः समन्ततः।19।[23]

आज भी नक्शा बनाने में 4 रंगों का प्रयोग होता है।

तन्मध्याह्नो युगपत् विषमो दिवसो विषुवतोऽन्यः॥[24]

उज्जयिनी लङ्कायाः सन्निहिता योत्तरेण समसूत्रे।

स्वर्मेरु स्थलमध्ये नरको बडवामुखं च जलमध्ये।

अमरमरा मन्यन्ते परस्परमधः स्थितान नियतान्॥12॥

उदयो यो लङ्कायां सोऽस्तमयः सवितुरेव सिद्धपुरे।

मध्याह्नो यवकोट्यां रोमकविषयेऽर्धरात्रं स्यात्॥13॥

स्थलजलमध्यलङ्का भूकक्षाया भवेच्चतुर्भागे।

उज्जयिनी लङ्कायाः तच्चतुरंशे समोत्तरतः॥14॥[25]

[23] विष्णु पुराण 2/2 [24] वराहमिहिर, पञ्चसिद्धान्तिका,13/17 [25] आर्यभटीय 4/12-14

भूवृत्तपादे पूर्वस्यां यमकोटीति विश्रुता। भद्राश्ववर्षे नगरी स्वर्णप्राकारतोरणा॥38॥
याम्यायां भारते वर्षे लङ्का तद्वन् महापुरी। पश्चिमे केतुमालाख्ये रोमकाख्या प्रकीर्तिता॥39॥
उदक् सिद्धपुरी नाम कुरुवर्षे प्रकीर्तिता॥40॥
भूवृत्तपादविवरास्ताश्चान्योन्यं प्रतिष्ठिता॥41॥
तासामुपरिगो याति विषुवस्थो दिवाकरः।
न तासु विषुवच्छाया नाक्षस्योन्नतिरिष्यते॥42॥[26]
यल्लङ्कोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशत्।
सूत्रं मेरुगतं सा मध्यरेखा भुवः॥
निरक्षदेशात् क्षितिषोडशांशे भवेदवन्ती गणितेन यस्मात्।[27]

वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड, के अनुसार यवद्वीप के बाद सप्तद्वीप, महासमुद्र (प्रशान्त) तथा पेरु का स्वर्गद्वार है

यवद्वन्तो यवद्वीपं सप्तराज्योपशोभितम्। सुवर्णरूप्यकद्वीपं सुवर्णाकरमण्डितम्॥301
ततः समुद्रद्वीपांश्च सुभीमान् द्रष्टुमर्हथ॥36॥
स्वाददस्योत्तरे तीरे योजनानि त्रयोदश।जातरूपशिलो नाम सुमहान् कनकप्रभः॥50॥
त्रिशिराः काञ्चनः केतुमालस्तस्य महात्मनः॥53॥
पूर्वस्यां दिशि निर्माणं कृतं तत् त्रिदशेश्वरैः॥54॥
पूर्वमेतत् कृतं द्वारं पृथिव्या भुवनस्य च।सूर्यस्योदयनं चैव पूर्वा ह्येषा दिगुच्यते॥64॥[28]
मानसोत्तरशैलस्य पूर्वतो वासवी पुरी।
दक्षिणे तु यमस्यान्या प्रतीच्या वारुणस्य च।उत्तरेण च सोमस्य तासां नामानि मे शृणु॥4॥
वस्वौकसारा शक्रस्य याम्या संयमनी तथा।पुरी सुखा जलेशस्य सोमस्य च विभावरी॥9॥
शक्रादीनां पुरे तिष्ठन् स्पृशत्येष पुरत्रयम्।विकोणौ द्वौ विकोणस्थस्त्रीन् कोणान्द्वे पुरे तथा॥16॥
उदितो वर्द्धमानाभिरामध्याह्नात्तपन रविः। ततः परं ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्तं नियच्छति॥17॥

मत्स्य पुराण अध्याय।24-

मेरोः प्राच्या दिशायां तु मानसोत्तरमूर्धनि॥20॥
वस्वौकसारा माहेन्द्री पुण्या हेमपरिष्कृता। दक्षिणेन पुनर्मेरोनिसस्य तु पृष्ठतः॥21॥
वैवस्वतो निवसति यमः संयमने पुरे। प्रतीच्यां तु पुनर्मेरोनिसस्य तु मूर्धनि॥22॥
सुखा नाम पुरी रम्या वरुणस्यापि धीमतः। दिश्युत्तरस्यां मेरोस्तु मानसस्यैव मूर्धनि॥23॥

[26] सूर्य सिद्धान्त।2/38-42
[27] सिद्धान्त शिरोमणि, गोलाध्याय, मध्यगति वासना, 24
[28] वाल्मीकि रामायण किष्किन्धाकाण्ड, अध्याय 40

तुल्या महेन्द्रपुर्यापि सोमस्यापि विभावरी।
वैवस्वते संयमने उद्यन सूर्यः प्रदृश्यते। सुखायामर्धरात्रस्तु विभावर्यास्तमेति च॥28॥
वैवस्वते संयमने मध्याह्ने तु रविर्यदा। सुखायामश्च वारुण्यामुत्तिष्ठन् स तु दृश्यते॥29॥
विभावर्यामर्धरात्रं माहेन्द्र्यामस्तमेव च। सुखायामथ वारुण्यां मध्याह्न तु रविर्यदा॥30॥
विभावर्यां सोमपुर्यामुत्तिष्ठति विभावसुः। महेन्द्रस्यामरावत्यामुद्गच्छति दिवाकरः॥31॥
सुखायामथ वारुण्यां मध्याह्ने तु रविर्यदा। स शीघ्रमेव पर्येति भानुरालातचक्रवत्॥32॥[29]

9. गणित तथा व्यवहार में समन्वय

ज्योतिष की हर प्रकार की माप में कुछ अशुद्धि होती है तथा दो चक्रों में सीधा सम्बन्ध नहीं होता। अतः गणित तथा व्यवहार में कई प्रकार का सामञ्जस्य करना पड़ता है।

1. दिन विभाग-किसी भी स्थान पर दिन आरम्भ के 4 विन्दु हैं-

(क) गणना के लिये मध्यरात्रि सुविधाजनक है, क्योंकि किसी भी देशान्तर रेखा के सभी स्थानों पर एक ही साथ अर्धरात्रि होगी।

(ख) दैनिक कर्मों के लिये सूर्योदय उपयुक्त है जब सभी सोकर उठते हैं।

(ग) छाया व्यवहार के लिये मध्याह्न उपयुक्त है, उस समय की छाया से सूर्य की क्रान्ति या स्थानीय अक्षांश निकाला जाता है। पितर का यों के लिये यह दिन का आरम्भ है।

(घ) ग्रहवेध सूर्यास्त से होता है, अतः उस कार्य के लिये यह दिन का आरम्भ है। चन्द्र-शृङोन्नति साधन इसी काल में है। इस्लाम में यह परम्परा अभी भी चल रही है, जिसे दूज का चान्द देखना कहते हैं। प्रदोष, शिवरात्रि आदि पर्वो का निर्धारण भी सायंकाल से ही होता है।

2. तिथि निर्णय गणित के अनुसार किसी भी समय चान्द्र तिथि आरम्भ हो सकती है, पर दैनिक कार्य के लिये सूर्योदय कालीन तिथि को ही अगले सूर्योदय तक माना जाता है। क्रमागत 2 सूर्योदयों में एक ही तिथि रहने पर जिस दिन तिथि न हीं बदलती (प्रथम) उसे अधिक मानते हैं। जब एक ही सावन दिन (सूर्योदय से आगामी सूर्योदय तक) 2 तिथियां आती हैं, तो जिस तिथि में सूर्योदय नहीं होता, वह क्षय तिथि होती है।

3. मास चन्द्र परिक्रमा के अनुसार मानुष मास तथा12 परिक्रमा मानुष वर्ष होता है जिसमें सप्तर्षि तथा ध्रुव वर्ष की गणना दी गयी है। पूजा तथा चन्द्र दर्शन के अनुसार चन्द्र कलाओं के अनुसार चन्द्र सूर्य के गति अन्तर द्वारा 29.5 दिनों का चान्द्र मास व्यवहार होता है। यह प्रायः सौर वर्ष के समान है।

4. चान्द्र सौर मान प्रायः प्रत्येक चान्द्रमास में सूर्य1 राशि से अगली राशि में संक्रमण करता है। जिस अमान्त मास में संक्रान्ति नहीं होती है, वह अधिक मास होता है (प्रायः 31 32 मासों के बाद)। प्रायः141 वर्षों में एक बार एक ही चान्द्र मास में दो संक्रान्ति होती है, दूसरी संक्रान्ति का मा स क्षय माना जाता है।

5. बार्हस्पत्य वर्ष पितामह सिद्धान्त में चान्द्र वर्ष (सौर वर्ष के प्रायः समतुल्य) को ही बार्हस्पत्य वर्ष मानते हैं। सूर्य सिद्धान्त में बृह स्पति द्वारा मध्यम गति से1 राशि में चलन को। वर्ष मानते हैं। यह उत्तर भारत में प्रचलित है। इसमें 85 सौर वर्षों में 86 बार्हस्पत्य वर्ष होते हैं। 60 वर्षों के चक्र में शनि की 2 तथा बृहस्पति की 5 परिक्रमायें होती हैं।

[29] विष्णु पुराण, 2/8

60 85 = 5100 वर्षों में दोनों प्रकार के चक्र पूर्ण होते हैं। विष्णु धर्मोत्तर पुराण, अध्याय 82 के अनुसार इनका आरम्भ प्रभव से होता है जब बृहस्पति कर्क राशि में होता है क्योंकि मत्स्य तथा राम अवतार के समय दोनों विधियों से प्रभव वर्ष था (9522, 4433 ईसा पूर्व में)

6. सायन तथा निरयण माप ग्रहों का या तारों का वास्तविक दर्शन जिस दिशा में होता है उसके द्वारा किसी निकट के नक्षत्र से तुलना कर उन का स्थान जानते हैं। किसी ग्रह का किसी नक्षत्र विन्द पर पुनः आना उसका भगण या परिक्रमा कहते हैं। सूर्य की नक्षत्र तुलना में परिक्रमा1 वर्ष है। यह स्थिर काल है। पृथ्वी पर इसका ऋतु चक्र के रूप में प्रभाव है। पृथ्वी का अ क्ष प्रायः 23.5 अंश झुका हुआ है, अतः सूर्य किरणें 23.5अंश उत्तर से दक्षिण तक किसी स्थान पर लम्ब दीख ती हैं। सूर्य की उत्तर दिशा गति में जब यह मध्य या विषुव रेखा पर होता है, तब वसन्त ऋतु आरम्भ होती है (उत्तरी गोलार्ध में)। किन्तु पृथ्वी का अक्ष कोणीय गति से विपरीत दिशा में 26000 वर्षों में। चक्र लगा रहा है। अतः सूर्य अपनी परिक्रमा से कुछ पूर्व ही विषुव रेखा को पार कर लेता है। हर वर्ष प्रायः 50" का अन्तर नक्षत्र परिक्रमा तथा विषुव संक्रमण काल में है। हम स्थानीय सूर्योदय, सूर्य क्रान्ति का निर्धारण विषुव संक्रमण काल से ही करते हैं। अतः मेषारम्भ विन्दु जो राशि चक्र का आरम्भ है तथा विषुव संक्रमण के समय के सूर्य स्थान का अन्तर जो ड़कर गणना करते हैं। यह अन्तर अयनांश कहा जाता है। अयनांश जोड़ने पर सूर्य का स्थान नाक्षत्र स्थान से कुछ अधिक आता है यह सायन (अयन सहित) मान है। निरयण (बिना अयन का) शुद्ध मान है जहां वास्तव में ग्रह दीखता है। प्रायः 2 100 वर्षों में यह अन्तर 30 अंश या1 मास का हो जाता है। अतः ऋतु के अनुसार हम जो कार्य करते हैं उसमें1 मास की भूल होती है। सूर्य सिद्धान्त की गणना के अनुसार यह अन्तर 270 से अधिक नहीं हो सकता है। अभी य ह अन्तर 240 है। अतः प्रायः 400 वर्षों के बाद वर्ष आरम्भ का मास चैत्र के बदले फाल्गुन करना पड़ेगा।

(7) अन्य अन्तर

सूर्य सिद्धान्त की माप तथा गणितीय विधियां पर्याप्त शुद्ध हैं। किन्तु बहुत काल के बाद दो प्रकार के अन्तर आते हैं, जिनके कारण मय असुर से लेकर विक्रमादित्य तक संशोधन करना पड़ा। मयासुर काल की अक्ष भ्रमण गति के अनुसार कल्प दिन दिये गये हैं। इसमें दिन मान बढ़ जाने के कारण कल्प दिनों की संख्या कम हो जायेगी। कितना कम होगा इसका निर्धारण नासा सूत्रों द्वारा सम्भव नहीं है। महज केवल 4713 ईसा पूर्व तक के लिये है। 3000 ई.पू. में कई संशोधनों के बाद भी इसमें 22 घण्टे की भूल होती है। किन्तु स्थूल अनुमान लगाया जा सकता है। प्रति वर्ष 2 माइक्रो सेकण्ड की वृद्धि होने पर 1000 वर्षों में अक्ष भ्रमण काल प्रायः1/50 सेकण्ड अधिक हो जायेगा। (8) सूर्य सिद्धान्त में12000 वर्ष के बीज संशोधन का चक्र है जिसकी अभी तक व्याख्या नहीं हो पायी है। ब्रह्मगुप्त तथा भास्कर ने इसका उल्लेख किया है, पर केवल आगम प्रमाण मानकर उसे बिना व्याख्या के स्वीकार कर लि या है। इस चक्र के लिये अभीतक मूलभूत संशोधन की जरूरत नहीं है। किन्तु पक्ष के बीच में चन्द्र गतियों का सं शोधन करना पड़ेगा जो सूर्य के आकर्षण के कारण अन्तर होता है। इसके अनुसार सिद्धान्त दर्पण तथा बापूजी के तकर के ग्रह-गणित में 4 संशोधन दिये गये हैं, जो पर्याप्त हैं।

***

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक नाम- रामानन्द द्वादश शिष्यों की प्रामाणिकता (सन्त पीपाजी विशेष), **लेखक-** डा. बंशीलाल, **संस्करण-** प्रथम, **वर्ष-** 2021ई., **ISBN**– 978-93-90179-34-3, **मूल्य**– 350 रु., **पृष्ठ संख्या**– 252, **प्रकाशक-** राजस्थनी ग्रन्थागार, प्रथम मंजिल, गणेश मन्दिर के सामने, सोजती गेट, जोधपुर-342001.

आलोच्य पुस्तक जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत शोध प्रबन्ध के आधार पर संशोधित एवं पल्लवित कर पुस्तकाकार प्रकाशित की गयी है। इसमें कुल 7 अध्याय हैं, जिनमें स्वामी रामानन्द एवं उनके द्वादश शिष्यों के सम्बन्ध में मात्र 2 अध्यायों में द्वितीयक स्रोतों के आधार पर सूचनाएँ दी गयी है, किन्तु तीसरे अध्याय से सन्त पीपाजी पर केन्द्रित सामग्री है। ऐसा प्रतीत होता है कि विश्वविद्यालयीय शोध की कतिपय बाध्यताओं के कारण "रामानन्द द्वादश शिष्यों की प्रामाणिकता" यह अंश नामकरण के साथ जोड़ना पड़ा है। वस्तुतः यह सम्पूर्ण ग्रन्थ सन्त पीपाजी के जीवन एवं साहित्य पर केन्द्रित है।

लेखक ने पीपाजी के सम्बन्ध में पूर्ववर्ती इतिहासकारों के द्वारा प्रवर्तित सिद्धान्तों का संकलन किया है, जो पर्याप्त नहीं है। यदि हम पीपाजी का जन्म 1323 ई. मानते हैं तो कतिपय ऐतिहासिक विसंगतियाँ जन्म लेंगी। जैसे- उनके गुरु रामानन्द का कालनिर्णय प्रभावित होगा, फिर इसके कारण कबीर का कालनिर्णय प्रभावित होगा और आगे की शिष्य परम्परा के काल में अंतर आ जायेंगे। अतः इतिहास सम्बन्धी गणनाओं में पुनर्विचार की आवश्यकता है। हमें आगे की ज्ञात परम्परा के आधार पर रामानन्द एवं उनके द्वादश शिष्यों के इतिहास पर पुनर्विचार करना होगा।

इसके अतिरिक्त सन्त पीपाजी के सम्बन्ध में अन्य सभी विवेचन महत्त्वपूर्ण हैं। चूँकि लेखक उसी क्षेत्र की संस्कृति में पले-बढ़े हैं तो निश्चित रूप से पीपाजी की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परम्परा से परिचित हैं। तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि वे विश्वविद्यालयीय शोध-शैली की बाध्यता से बँधे हुए हैं। फिर भी, पीपाजी पर अभीतक किये गये सम्पूर्ण कार्यों का सन्दर्भ यहाँ पर पाठक को मिल जाता है, जो आगे अग्रतर शोध के लिए उपयोगी हैं। डा. पूरन सहगल द्वारा किया गया शोध "सन्त पीपाजी एवं भक्ति आन्दोलन" का यहाँ भरपूर उपयोग हुआ है। इसी प्रकार ललित शर्मा कृत "राजर्षि सन्त पीपाजी" ब्रजमोहन टाक कृत "सन्त शिरोमणि पीपा : जीवन दर्शन" आदि अद्यतन किये गये कार्यों का यहाँ समायोजन किया गया है। द्वितीयक स्रोतों पर आधारित इस पुस्तक का महत्त्व इस बात को लेकर है कि पाठक जब पहली बार पीपाजी को पढ़ने लगे, तो उसे एक ही पुस्तक में सब कुछ मिल जाये। लेखक ने परिश्रम कर इन स्रोतों का संकलन किया है। साथ ही, लेखक ने पीपाजी के पदों की खोज में अनेक प्राच्य विद्या प्रतिष्ठानों के ग्रन्थ भंडारों को देखा है और अपनी समीक्षा दी है। इसके कारण एक और अद्यतन किए गये कार्यों की पुष्टि भी कर दी है, जो महत्तवपूर्ण है।

रामानन्द स्वामी के अन्य सभी शिष्यों पर भी इस प्रकार के ग्रन्थ की आवश्यकता है, जिनमें से रविदास, कबीर आदि पर तो बहुत कार्य हो चुके हैं, पर सेन नाई, सधन, आदि अज्ञात अल्प-ज्ञात सन्तों पर भी इस प्रकार के कार्य के लिए प्रेरणा मिलती है। कुल मिलाकर सामान्य पाठकों के लिए यह ग्रन्थ पठनीय है तथा सन्त पीपाजी के सम्बन्ध में ज्ञानप्रद है। लेखक के परिश्रम को साधुवाद देता हूँ।

- भवनाथ झा

मन्दिर द्वारा संचालित महावीर वात्सल्य अस्पताल में सफलता के नये आयाम

मेडिकल साइंस में दुर्लभ माने जानेवाले डबल वाल्वुलर हार्ट डिज़ीज़ से ग्रसित गर्भवती महिला की सुरक्षित सिजेरियन डिलीवरी हुई है। पलमनरी आर्टरी हाइपर टेंशन से जूझ रही प्रसूता ने 1.87 किलोग्राम वजन के बच्चे को जन्म दिया है। मां और नवजात दोनों ठीक हैं।

दूसरी ओर इसी अस्पताल में पांच महीने के बच्चे की लेप्रोस्कोपिक पाइलोप्लास्टी सफलतापूर्वक की गई है। बच्चे के बाएं साइड की किडनी में सूजन था। इससे किडनी के कार्य करने की क्षमता आधी हो गई थी। दूरबीन विधि से रुकावट वाले हिस्से को काटकर हटा दिया गया है। ऑपरेशन के बाद बच्चा ठीक हो गया है। खास बात यह रही कि इस जटिल ऑपरेशन में मात्र बीस हजार का खर्च आया।

महावीर वात्सल्य में हाई रिस्क डिलीवरी-हार्ट और लिवर डिसऑर्डर मरीज ने स्वस्थ बच्ची को जन्म दिया। अस्पताल में काफी जटिल डिलीवरी में डाक्टरों की टीम ने सफलता पाई है। 30 वर्षीया गर्भवती को सिवियर वाल्वुलर हार्ट डिज़ीज़ के साथ लिवर डिसऑर्डर है। उसे फेफड़े में पानी जमने की समस्या थी। सांस लेने में भी तकलीफ थी। चिकित्सकों के अनुसार इस तरह के ऑपरेशन को कम से कम समय में पूरा करना होता है। ऑपरेशन के दौरान हार्ट फेल होने का खतरा बना रहता है। लिवर डिसऑर्डर के कारण ज्यादा रक्तस्राव का खतरा होता है। इस अस्पताल में काफी कम खर्च में ऐसे जटिल ऑपरेशन किये जा रहे हैं।

महावीर मन्दिर में सौन्दर्यीकरण का नया अध्याय

महाशिवरात्रि के पावन अवसर पर महावीर मन्दिर में हनुमानजी के मुख्य गर्भगृह का द्वार विशेष प्रकार के सुनहरे रंग से रंग दिया गया है। प्रथम तल पर स्थित शिवमण्डप को भी गोल्डन परत से काफी आकर्षक रूप दिया गया है। गर्भ गृह के पूरब स्थित शिवालय के चौखट और उसके किनारे भी सुनहरे हो गये हैं। सरस्वती की विशाल प्रतिमा के ऊपर इसी सुनहले रंग से चित्रकारी कर पट्ट लगाये गये हैं। ये सौन्दर्यीकरण महावीर मन्दिर में आनेवाले श्रद्धालुओं के लिए आकर्षण के केन्द्र बने हुए हैं।

आवरण 2 एवं 3 पर जारी»

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

जल-सूक्त

(ऋग्वेद, प्रथम मंडल, सूक्त संख्या 23 , मन्त्र संख्या 16 से प्रारम्भ)

वेदों में जल को देवता कहा गया है। जल के लिए आपोदेव नाम आया है। ऋग्वेद के चार सूक्त इसी आपोदेव को समर्पित हैं। हम इन सूक्तों में वैदिक परम्परा की दृष्टि में जल के महत्त्व पर प्रकाश पाते हैं। यहाँ ऋग्वेद से उन सूक्तों को क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है।

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम्॥

पृञ्चतीर्मधुना पयः॥16॥

यज्ञ की इच्छा करनेवालों की सहायता करनेवाले मधुर रस जल का प्रवाह, माताओं के समान पुष्टिप्रद हैं। वे दुग्ध को पुष्ट करते हुए यज्ञ-मार्ग से गमन करते हैं।

अमूया उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह॥

ता नो हिन्वन्त्वध्वरम्॥17॥

जो ये जल सूर्य में (सूर्य में) समाहित हैं। अथवा जिन (जलों) के साथ सूर्य का सामीप्य है, ऐसे ये पवित्र जल हमारे 'यज्ञ' को उपलब्ध हों।

अपो देवीरूप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः॥

सिन्धुभ्यः कर्त्व हविः॥18॥

हमारी गायें जिस जल का सेवन करती हैं, उन जलों की स्तुति हम करते हैं। अन्तरिक्ष एवं भूमि पर प्रवहमान उन जलों के लिए हम हवि अर्पित करते हैं।

अप्स्व अन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये॥

देवा भवत वाजिनः॥19॥

जल में अमृत के समान गुण है। जल में औषधीय गुण है। हे देवो! ऐसे जल की प्रशंसा से आप उत्साह प्राप्त करें।

-क्रमशः अगले अंक में प्रकाश्य

व्रत-पर्व, चैत्र, 2078 वि. सं., 29 मार्च से 27 अप्रैल, 2021ई.

1. होली (खेल) 29 मार्च, 2021ई., सोमवार

2. सोमवती अमावस्या, 12 अप्रैल, 2021ई., सोमवार

सोमवार के दिन यदि दोपहर के समय अमावस्या तिथि हो तो सोमवती अमावस्या का योग बनता है। इस अवसर पर सन्तान की समृद्धि के लिए पीपल के नीचे भगवान् विष्णु, सोमा धोबिन, रुद्रशर्मा आदि की पूजा कर कोई फल हाथ में लेकर पीपल के वृक्ष की परिक्रमा का विधान किया गया है।

3. वसन्तनवरात्रारम्भ, 13 अप्रैल, 2021ई., मंगलवार

चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि को चैती नवरात्र आरम्भ होता है। इस दिन से विक्रम संवत् 2078 का आरम्भ हो रहा है। हिन्दुओं के लिए यह नववर्ष का दिन है।

4. **मेष संक्रान्ति, सतुआइनि, आर्यभट जयंती, हनुमद्-ध्वजदान– 14 अप्रैल, 2021ई. बुधवार**

पुण्यकाल 12 बजे दिन तक। प्रातःस्नान, दान आदि की संक्रान्ति

5. **जूड़शीतल (मिथिला) खेल– 15 अप्रैल, 2021ई., गुरुवार**

4. चैती छठ का खरना, 17 अप्रैल, 2021ई, शनिवार

5. चैती छठ का सन्ध्या अर्घ्य, 18 अप्रैल, 2021ई., रविवार

6. चैती दुर्गापूजा का बिल्वाभिमन्त्रण, 18 अप्रैल, 2021ई., रविवार

7. चैती छठ का प्रातःकाल का अर्घ्य, 19 अप्रैल, 2021ई. सोमवार

8. चैती दुर्गापूजा का पट खुलना तथा पत्रिका-प्रवेश, 19 अप्रैल, 2021ई. सोमवार

9. चैती दुर्गापूजा में निशापूजन, 19 अप्रैल, 2021ई. सोमवार

10. चैती नवरात्र की महाष्टमी, 20 अप्रैल, 2021ई. मंगलवार

11 नवरात्र की महानवमी, 21 अप्रैल, 2021ई., बुधवार

12. श्रीरामनवमी, 21 अप्रैल, 2021ई., बुधवार

शास्त्र के अनुसार रामनवमी मध्याह्नव्यापिनी व्रत है। इस वर्ष पूर्व दिन मंगलवार की सन्ध्या 7 बजकर 15 मिनट से बुधवार को 7:06 मिनट तक नवमी तिथि है। इस प्रकार बुधवार को दिनभर नवमी तिथि है। इस वर्ष पुनर्वसु नक्षत्र सोमवार की रात्रि को ही समाप्त हो जाती है। बुधवार होने के कारण राहु एवं शनि की वेला दिन में लगभग 9 बजे से 10:30 तक तथा 12:00 से 1:30 तक है। अतः मध्याह्न काल में श्रीराम की पूजा का आरम्भ या तो 10:30 से 12:00 तक कर लें अथवा 1:30 के बाद आरम्भ करें।

13. विजया दशमी, 22 अप्रैल, 2021 ई. बृहस्पतिवार

14. महावीर जयन्ती (2619वीं, जैन) 24 अप्रैल, 2021ई., शनिवार

महावीर जयंती (महावीर स्वामी जन्म कल्याणक) चैत्र शुक्ल त्रयोदशी तिथि को मनाया जाता है। यह पर्व जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी के जन्म कल्याणक के उपलक्ष में मनाया जाता है। यह जैनों का सबसे प्रमुख पर्व है।

15. हनुमज्जयन्ती, 27, अप्रैल, 2021ई.

दक्षिण भारत की एक परम्परा के अनुसार चैत्र पूर्णिमा को हनुमानजी की जयन्ती मनायी जाती है। संचार मध्यम के प्रभाव से उत्तर भारत में में इसकी देखादेखी लोग इस दिन मनाने लगे हैं, किन्तु उत्तर भारत में दीपावली के एक दिन पहले कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को परम्परागत विधि से हनुमज्जयन्ती मनायी जाती है। जगद्गुरु रामानन्दाचार्य ने वैष्णवमताब्जभास्कर में स्पष्ट रूप से कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को हनुमान-जयन्ती मनाने का विधान किया है।

***

रामावत संगत से जुड़ें

1) रामानन्दाचार्यजी द्वारा स्थापित सम्प्रदाय का नाम रामावत सम्प्रदाय था। रामानन्द-सम्प्रदाय में साधु और गृहस्थ दोनों होते हैं। किन्तु यह रामावत संगत गृहस्थों के लिए है। रामानन्दाचार्यजी का उद्घोष वाक्य- **'जात-पाँत पूछ नहीं कोय। हरि को भजै सो हरि को होय'** इसका मूल सिद्धान्त है।

2) इस रामावत संगत में यद्यपि सभी प्रमुख देवताओं की पूजा होगी, किन्तु ध्येय देव के रूप में सीताजी, रामजी एवं हनुमानजी होंगे। हनुमानजी को रुद्रावतार मानने के कारण शिव, पार्वती और गणेश की भी पूजा श्रद्धापूर्वक की जायेगी। राम विष्णु भगवान् के अवतार हैं, अतः विष्णु भगवान् और उनके सभी अवतारों के प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते हुए उनकी भी पूजा होगी। श्रीराम सूर्यवंशी हैं, अतः सूर्य की भी पूजा पूरी श्रद्धा के साथ होगी।

3) इस रामावत-संगत में वेद, उपनिषद् से लेकर भागवत एवं अन्य पुराणों का नियमित अनुशीलन होगा, किन्तु गेय ग्रन्थ के रूप में रामायण (वाल्मीकि, अध्यात्म एवं रामचरितमानस) एवं गीता को सर्वोपरि स्थान मिलेगा। **'जय सियाराम जय हनुमान, संकटमोचन कृपानिधान'** प्रमुख गेय पद होगा।

4) इस संगत के सदस्यों के लिए मांसाहार, मद्यपान, परस्त्री-गमन एवं परद्रव्य-हरण का निषेध रहेगा। रामावत संगत का हर सदस्य परोपकार को प्रवृत्त होगा एवं परपीड़न से बचेगा। हर दिन कम-से-कम एक नेक कार्य करने का प्रयास हर सदस्य करेगा।

5) भगवान् को तुलसी या वैजयन्ती की माला बहुत प्रिय है अतः भक्तों को इसे धारण करना चाहिए। विकल्प में रुद्राक्ष की माला का भी धारण किया जा सकता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र या ललाट पर सिन्दूरी लाल टीका (गोलाकार में) करना चाहिए। पूर्व से धारित तिलक, माला आदि पूर्ववत् रहेंगे। स्त्रियाँ मंगलसूत्र-जैसे मांगलिक हार पहनेंगी, किन्तु स्त्री या पुरुष अनावश्यक आडम्बर या धन का प्रदर्शन नहीं करेंगे।

6) स्त्री या पुरुष एक दूसरे से मिलते समय **राम-राम, जय सियाराम, जय सीताराम**, हरि -जैसे शब्दों से सम्बोधन करेंगे और हाथ मिलाने की जगह करबद्ध रूप से प्रणाम करेंगें।।

7) रामावत संगत में मन्त्र-दीक्षा की अनूठी परम्परा होगी। जिस भक्त को जिस देवता के मन्त्र से दीक्षित होना है, उस देवता के कुछ मन्त्र लिखकर पात्र में रखे जायेंगे। आरती के पूर्व गीता के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भक्त का संकल्प कराने के बाद उस पात्र को हनुमानजीके गर्भगृह में रखा जायेगा।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥ (गीता, 2.7)

8) आरती के बाद उस भक्त से मन्त्र लिखे पुर्जा में से कोई एक पुर्जा निकालने को कहा जायेगा। भक्त जो पुर्जा निकालेगा, वही उस भक्त का जाप्य-मन्त्र होगा। मन्दिर के पण्डित उस मन्त्र का अर्थ और प्रसंग बतला देंगे, बाद में उसके जप की विधि भी। वही उसकी मन्त्र-दीक्षा होगी। इस विधि में हनुमानजी परम-गुरु होंगे और वह मन्त्र उन्हीं के द्वारा प्रदत्त माना जायेगा। भक्त और भगवान् के बीच कोई अन्य नहीं होगा।

9) रामावत संगत से जुड़ने के लिए कोई शुल्क नहीं है। भक्ति के पथ पर चलते हुए सात्त्विक जीवन-यापन, समदृष्टि और परोपकार करते रहने का संकल्प-पत्र भरना ही दीक्षा-शुल्क है। आपको सिर्फ https://mahavirmandirpatna.org/Ramavat-sangat.html पर जाकर एक फार्म भरना होगा। मन्दिर से सम्पुष्टि मिलते ही आप इसके सदस्य बन जायेंगे।

***

सुनहले कमलों के फूल से भगवान् शिव की आराधना की थी। अनुमान किया जाता है कि वर्तमान में स्थापित शिवलिंग के स्थल पर कभी श्रीराम ने भी पूजा की होगी। इसी पवित्र स्थल पर लगभग 30 वर्ष पहले एक गुप्तकालीन शिवलिंग मिला था। जिनका स्थान सतह से लगभग 7 फीट नीचे था। 2004 ई. में महावीर मन्दिर, पटना के द्वारा यहाँ भव्य मन्दिर का निर्माण कराया गया तथा नया अरघा, नन्दी एवं शिव-परिवार की मूर्तियाँ स्थापित कर उस गुप्तकालीन शिवलिंग को प्रतिष्ठापित किया गया।

महावीर मन्दिर में महाशिवरात्रि के अवसर पर रुद्राभिषेक सम्पन्न

महावीर मन्दिर में रुद्राभिषेक की विशेष व्यवस्था आज लगभग 16 वर्षों से चल रही है। यहाँ यजमान को जिस तिथि में अभिषेक कराना होता है, उसके लिए पहले से ही निर्धारित शुल्क जमा कराने की व्यवस्था है। यह शुल्क वर्तमान में सामान्यतः 1001 रुपये हैं। इसके बाद सारी व्यवस्था मन्दिर की ओर से की जाती है। यहाँ तक कि पुरोहित की भी दक्षिणा इसी शुल्क में सम्मिलित होती है।

भूतल पर शिवमन्दिर में रुद्राभिषेक

मन्दिर में तीन स्थानों पर विशेष दिनों में अभिषेक होते हैं। इस वर्ष महाशिवरात्रि के अवसर पर 48 यजमानों के लिए अभिषेक सम्पन्न कराये गये। इस रुद्राभिषेक में यजमान अथवा उनके प्रतिनिधि की सदेह उपस्थिति अनिवार्य है।

प्रथम तल पर स्थित शिवमण्डप में शिवरात्रि के दिन रुद्राभिषेक

पत्रिका पंजीयन सं. 52257/90

महावीर मन्दिर के सौन्दर्यीकरण में एक कदम

श्री महावीर स्थान न्यास समिति, पटना द्वारा निःशुल्क ई-बुक के रूप में प्रकाशित